परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 18, अंक 1, अप्रैल 2011

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2010
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी-275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. अनिल आफसेट एंड पैकेजिंग प्रा. लि., दिल्ली-110007 में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 1, अप्रैल 2011

विषय सूची

आलेख

माणिक गोविंद चतुर्वेदी
प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था का विहंगावलोकन 1

बी.के. पंडा
आश्रम विद्यालयों के कार्यकलापों के पुनर्गठन की आवश्यकता 21

सुजीत कुमार चौधरी
दलित शिक्षा का समाजशास्त्रीय अवलोकन 51

जे.डी. सिंह
भारत में उच्च शिक्षा के मुद्दे, चुनौतियां और सुझाव 57

शोध टिप्पणी / संवाद

राजेन्द्र पाल सिंह
शिक्षा, संस्कृति और परम्परा 79

सत्यवीर
मुक्त विद्यालयीय शिक्षा संस्थान के विद्यार्थियों की उपलब्धि पर वीडियो पाठ अध्ययन एवं शैक्षिक दूरदर्शन की प्रभावशीलता 91

अनुपम सिंह और सुनील सिंह
छात्राध्यापकों के पर्यावरणीय आचारशास्त्र के ज्ञान एवं व्यवहार का अध्ययन 103

चिंतक और चिंतन

नन्दा द्विवेदी और शैलेन्द्र कुमार वर्मा
आधुनिक संदर्भ में पॉलो फ्रेरे का मूल्य आधारित शैक्षिक चिंतन 133

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 1, अप्रैल 2011

प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था का विहंगावलोकन

माणिक गोविंद चतुर्वेदी*

संसार में शायद ही कोई ऐसा देश हो जहां हजारों साल पुरानी शिक्षा व्यवस्था आज भी किसी न किसी रूप में जीवित है और यदि अंग्रेजों ने उनका मूलोच्छेदन न किया होता तो आज की शिक्षा व्यवस्था का रूप कुछ और ही होता। साामन्यत: भारतीय शिक्षा व्यवस्था को तीन काल खण्डों में विभक्त कर व्याख्यायित किया जाता रहा है; जैसे– 1. प्राचीन शिक्षा व्यवस्था अर्थात वैदिक, जैन, बौद्ध और आगम कालीन शिक्षा व्यवस्था (वैदिक काल से ईसवी सन् में 10–13वीं शताब्दी तक)। 2. मध्यकालीन शिक्षा व्यवस्था, और 3. आधुनिक शिक्षा व्यवस्था अर्थात अंग्रेजों द्वारा प्रकल्पित, प्रचारित और विकसित शिक्षा व्यवस्था, जो सम्प्रति अखिल भारतीय शिक्षा व्यवस्था के रूप में मान्य है तथा उसे ही केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा प्राथमिक और उच्च स्तरों पर पाश्चात्य प्रेरणा से ही (स्वकीय चिन्तन के आधार पर नहीं।) और अधिक पल्लवित और पुष्पित करने के उपक्रम किये जा रहे हैं। यद्यपि प्राचीन पारंपरिक पाठशाला और मदरसा–शिक्षा व्यवस्थाओं को बनाये रखने के कुछ कार्यक्रम भी चलाये जाते हैं, पर उन्हें भी विकास और आधुनिकीकरण के नाम पर बदलने के उपक्रम होते रहते हैं। परंतु उल्लेखनीय है कि सरकारी अधिकारी और शिक्षाशास्त्रीयों के इन प्रयासों के बावजूद आजकल की पाश्चात्य प्रेरित शिक्षा व्यवस्था में भी भारतीय समाज के प्राचीन शैक्षिक संस्कारों तथा व्यवहारों के कारण प्राचीन शिक्षा तंत्र के कुछ अभिलक्षण आज भी दिखाई देते हैं, जैसे– कतिपय पारंपरिक शिक्षित समाजों में नवजात–शिशुओं को श्लोक, छन्द, वर्णमाला, गिनती आदि कंठस्थ करवाना तथा विद्यारम्भ या अक्षर–स्वीकृति संस्कार देना, अंक–विद्याभ्यास, उपनयन संस्कार, पाठ–पूजन आदि की परम्पराएं जीवित हैं। परंतु ये परंपराएं कतिपय पारंपरिक–शिक्षित समाजों में दिखायी देती हैं, जो अंग्रेजी शिक्षा के आने समय तक समस्त भारतीय शिक्षा व्यवस्था का मेरूदण्ड था, आज चाहे

* पूर्व प्रोफेसर, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली केन्द्र, दिल्ली

वह समाज अल्प संख्या में भले ही क्यों न हो गया हो।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था के उक्त काल विभाजन को निश्चित ही वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इसके मूल में राजनैतिक दृष्टि ही प्रधान दिखती है। जबकि प्राचीन और मध्यकालीन शिक्षा व्यवस्थायें राजनीति और राजतंत्र से पूरी तरह मुक्त थीं। राजा या राजतंत्र का शिक्षातंत्र पर न कोई अधिकार था और न ही प्रभाव। अत: वे स्वतंत्र और स्वायत्त शिक्षा व्यवस्था थी जो शास्त्रज्ञ विद्वानों और सहृदय समाज द्वारा सम्पोषित थी। उस व्यवस्था में न कोई शुल्क था और न ही किसी निरीक्षक या शिक्षा अधिकारी का भय था। प्राथमिक स्तर पर शिक्षक स्वयं पाठ्यचर्या का निर्धारक और संचालक था, जबकि आज का शिक्षक पाठ्यचर्या निर्माण में प्रशिक्षित होने के बाद भी वह अपने शैक्षिक क्रिया-कलापों में स्वतंत्र रूप में कुछ भी नया करने में स्वतंत्र नहीं है। पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक ही निर्णय लेता था कि छात्रों को क्या सिखाया जाय, और कौन-सा छात्र किस विषय में आगे जाने योग्य है, वह ही उसे आगे के अध्ययन के लिए मार्गदर्शन भी करता था और उसकी रुचि के विषय के विशेषज्ञ के पास प्रेषित कर देता था। इस प्रकार का शैक्षिक स्वातंत्र्य आज की सरकारी शिक्षा व्यवस्था में संभव नहीं है। क्योंकि आज का शिक्षक सरकारी या गैर-सरकारी चाकर के रूप में कार्य करता है, जिससे न उसकी प्रतिभा प्रस्फुटित होती और न ही वह छात्रों के मनोबौद्धिक और शारीरिक विकास ही समुचित रूप से कर पाता है।

इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता संग्राम की कालावधि में कुछ भारतीय विचारकों ने जो मूलत: प्राचीन परंपरा में शिक्षित थे, अत: अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था से पूर्णत: संतुष्ट न थे। इसीलिए उन्होंने अंग्रेजों की सरकारी शिक्षा व्यवस्था के समानान्तर अपनी एक नई शिक्षा व्यवस्था, न केवल परिकल्पित की, अपितु विकसित करने के प्रयत्न भी किए, विशेषकर बालगंगाधर तिलक, गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर, महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय आदि ने प्राथमिक और उच्च शिक्षा के स्तरों पर भारतीय दृष्टि से एक नई शिक्षा व्यवस्था को खड़ा करने का पुनीत कार्य किया था। परन्तु स्वतंत्र भारत की सरकार ने इन राष्ट्रवादी भारतीय शिक्षा दार्शनिकों द्वारा स्थापित शिक्षा संस्थाओं को अनुदान और मान्यता के प्रावधानों के आधार पर शिक्षा की मुख्य पाश्चात्य धारा में निमज्जित कर दिया। (क्योंकि हमारी सरकार, अंग्रेजी सरकार का आधुनिक भारतीय संस्करण ही है) राष्ट्रवादी शिक्षाचार्यों द्वारा स्थापित उक्त संस्थाएँ आज जीवित तो हैं, परंतु उनमें उनके संस्थापकों की दृष्टि और आचरण अब दिखाई नहीं देता।

महात्मा गाँधी और उनके समकालीन अन्य शिक्षा-दार्शनिक भारतीय शिक्षा के मौलिक स्वरूप के विषय में इसीलिए सोच सकते थे, क्योंकि वे अपनी पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था से न केवल परिचित थे, अपितु वे उसी व्यवस्था के परिचायक भी थे। उन्होंने अपनी आँखों से प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था की परंपरा को क्रमशः क्षीणमान होते तथा अंग्रेजी व्यवस्था को विकसित होते देखा था। इस समय हमें ऐसे भी प्रतिभावान चिन्तक मिलते हैं, जिन्होंने प्राथमिक शिक्षा तो पारंपरिक पाठशालाओं में अपनी मातृभाषाओं के माध्यम से प्राप्त की थी और उच्च शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से, सरकारी संस्थाओं में, जैसे-जगदीश चन्द्र बसु, रामानुजन, सी.वी. रमन तथा अनेक ने सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक व धार्मिक आन्दोलनों के संचालक नेता दिखाई देते हैं, जिनके प्रयासों से 19वीं-20वीं शताब्दियों में भारत में जनजागरण आया था तथा जिन्हें आज भारत में ही नहीं, अपितु अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी सम्मान प्राप्त हुआ है, जो स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् के वर्षों में अब हमें दिखाई नहीं देता। क्योंकि जो अपनी जड़ों से कट जाते हैं, वे फलते-फूलते नहीं। पता नहीं कब तक हम पश्चिम का अन्धानुकरण करने के लिए अभिशप्त रहेंगे। हमें कब बौद्धिक स्वतंत्रता प्राप्त होगी?

अंग्रेजी राज के प्रारम्भिक दिनों में पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था के क्रमिक ह्रास के दर्द का अहसास आज के शिक्षाशास्त्रियों को हो न हो, क्योंकि वे पाश्चात्य शैक्षिक चिन्तन में आकंठ निमग्न हो चुके हैं, परन्तु जिन्होंने उसका थोड़ा भी आस्वाद लिया है, उन्हें आज भी उसका मलाल है कि उन्हें जिस सहजता के साथ अपनी भाषाओं के माध्यम से जो ज्ञान और चारित्रिक गुण प्राप्त हुए थे और मौलिक चिन्तन की क्षमता प्राप्त हुई थी, वह आज के शिक्षातंत्र के अंतर्गत उनकी संततियों को प्राप्त नहीं हो पा रही है। महात्मा गांधी की प्रारंभिक शिक्षा भी पारंपरिक ही थी। अतः उन्हें नई अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था के विकास से संतोष नहीं था, अपितु उन्हें दुःख था, जिसे उन्होंने 1931 में लन्दन के एके छोटे से हॉल में दिए गए अपने व्याख्यान में व्यक्त किया था। उन्होंने भारत की पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था को एक 'खूबसूरत पेड़' (A beautiful tree) बताया था और कहा था कि जब अंग्रेज भारत में राज करने लगे तो उन्होंने इस खूबसूरत पेड़ को देखा था, उनमें से कुछ ने तो इसकी सराहना भी की थी। परन्तु कुछ औरों को वह अच्छा नहीं लगा था। अतः उन्होंने धीरे-धीरे उसके नीचे की मिट्टी को खिसकाया, खोदा और जड़ों की मजबूती देखकर उसकी तारीफ भी की, पर उसे खुला ही छोड़ दिया। इसीलिए अंग्रेजी सरकार के अनेक अधिकारियों और विद्वानों से इस खूबसूरत पेड़ की जड़ों को सींचने और विकसित करने की माँग भी की थी। परन्तु

कूटनीतिज्ञ अंग्रेज अधिकारियों ने इन विद्वानों की बात न मानकर पाश्चात्य शिक्षा को अर्थात् अंग्रेजी माध्यम से पाश्चात्य विज्ञान की शिक्षा का दुराग्रह नहीं छोड़ा और उन्होंने उस खूबसूरत पेड़ की जड़ों को खोदा और खुला ही छोड़ दिया। परिणाम हुआ, क्रमशः ये जड़ें सूख गईं और पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था का खूबसूरत पेड़ ढह गया। इसीलिए महात्मा गांधी ने कहा था कि हम अंग्रेजों के सभी अपराध माफ कर सकते हैं, परंतु ब्रिटिश सरकार का यह अपराध कभी भी माफ नहीं किया जा सकता। क्योंकि उन्होंने हमारी शिक्षा पद्धति को समूल नष्ट कर दिया था।

जैसे-जैसे भारत में अंग्रेजों के राज का विस्तार हुआ, उनके प्रशासनिक अधिकारियों को तत्कालीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था के प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होने लगे। बेलारी के कलेक्टर ए.डी. कैम्पबेल ने अपने अधीनस्थ क्षेत्र में एक शैक्षिक सर्वेक्षण करवाया था और उसके आधार पर उनके कहा था कि भारतीय शिक्षा निःसंदेह ब्रिटिश शासन से पूर्व बहुत अच्छी थी। इसी प्रकार बंगाल और बिहार को लेकर जो शिक्षा सर्वेक्षण हुए थे उनसे भी यही ज्ञात हुआ था कि साक्षरता की दर उस समय यूरोप की साक्षरता की दर से बहुत अधिक थी। इतना ही नहीं, जो निरक्षर थे, वे भी भारत की प्राचीन वाचिक-परंपरा के कारण ज्ञान-विज्ञान-हीन नहीं थे। परन्तु अनेक अंग्रेज प्रशासनिक अधिकारी अंग्रेज विद्वानों के उक्त शैक्षिक सर्वेक्षणों में प्राप्त सूचनाओं से सहमत नहीं थे।

अंग्रेजी सरकार के अधिकारियों और विद्वानों के इस प्रकार के मतभेद के कारण ही भारत में प्रथम भाषाविवाद का सूत्रपात हुआ था। एक ओर प्राच्य विद्याविशारद अंग्रेज विद्वान और अधिकारी थे, जो मानते थे कि अंग्रेजी सरकार को अपने अधिकार क्षेत्र में पहले से चली आ रही शिक्षा व्यवस्था को संपोषित कर उसका आधुनिकीकरण करना चाहिए तथा भारतीय परंपरानुसार विविध विषयों को भारतीय भाषाओं के माध्यम से पढ़ाना चाहिए, जबकि अंग्रेजी के पक्षधर मैकोले जैसे अधिकारी चाहते थे कि भारत के लोगों को अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य विज्ञान की शिक्षा दी जानी चाहिए। प्राच्य विद्याविशारदों के प्रयासों के कारण यद्यपि 1781 में 'कलकत्ता मदरसा' और 1972 में 'बनारस संस्कृत कॉलेज' की स्थापना हो गई थी। परन्तु इस भाषा-विवाद में अंग्रेजी के पक्षधरों की संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही थी। इन्हीं के प्रभाव के कारण, ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1831 में भारतीयों की शिक्षा के लिए एक लाख रुपयों का वार्षिक अनुदान देने की व्यवस्था की तो उक्त भाषा-विवाद और भी अधिक उग्र हो गया। अंग्रेजी के पक्षधरों

ने भारतीय विद्वानों को भी अपने पक्ष में खड़ा करने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप राजा राममोहन राय जैसे भारतीय विद्वान भी अंग्रेजी के पक्ष में खड़े हो गए और लॉर्ड मैकोले के नेतृत्व में यह प्रस्ताव अंग्रेज सरकार के सामने आया कि एक लाख रुपए का अनुदान भारतीयों को अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य विज्ञानों की शिक्षा देने पर ही व्यय किया जाए, जिसे तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिक ने 1835 में स्वीकार कर लिया। वस्तुत: इस संकल्प तथा इससे संबंधित अन्य प्रावधानों के आधार पर, जिन्हें 1854 के 'बुड्स डिस्पैच' कहा जाता है, भारत में नई शिक्षा की व्यवस्था की नींव पड़ी और इस प्रकार हजारों साल से चली आ रही भारतीय शिक्षा व्यवस्था के अंत का आरंभ हो गया।

यह उल्लेखनीय है कि 18वीं और 19वीं शताब्दी में जब सभी भारतीय बालक-बालिकाओं को उन्हीं की भाषा में प्राथमिक शिक्षा दी जाती थी तब आधुनिक भारतीय भाषाओं में काव्य और काव्यशास्त्र के साथ-साथ विभिन्न जीवनोपयोगी विषयों और शिल्पों पर विविध प्रकार का साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा था। क्योंकि परंपरानुसार शिक्षक वही है जो अपने शिष्य की स्थिति के अनुरूप लोकभाषा, प्राकृत अथवा संस्कृत के माध्यम से छात्र को ज्ञान प्रदान करता है, जैसा कि कहा गया है,

संस्कृत प्राकृत वक्यिैर्य: शिष्यमनुरूपत:।
देशभाषाद्युपविश्य बोधयेत् स गुरु: स्मृता:।।

प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में किसी एक भाषा को माध्यम भाषा के रूप प्रयुक्त करने का नियम नहीं था जैसा कि आजकल अंग्रेजी माध्यमी स्कूलों में अंग्रेजी माध्यम अनिवार्य है। परंपरानुसार शिक्षक उसी भाषा को शिक्षा का माध्यम बना सकता था, जिससे छात्र विषयवस्तु को समझ सके।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एडम ने बंगाल और बिहार में प्राथमिक शिक्षा का जो सर्वेक्षण किया था, उसका प्रतिवेदन जब प्रकाशित हुआ तो अंग्रेजी प्रशासक आश्चर्यचकित रह गए, क्योंकि इस प्रतिवेदन के अनुसार बंगाल और बिहार के प्रत्येक गांव में विद्यालय था तथा प्रत्येक विद्यालय स्वायत्त था, जो बिना किसी प्रकार की सरकारी सहायता के, केवल गांव वालों की सहायता से सभी वर्गों और वर्णों के बालकों को नि:शुल्क शिक्षा प्रदान करता था। प्रतिवेदन में विद्यालय

में पढ़ाए जाने वाले विषयों, उनके शिक्षण की गुणवत्ता, शिक्षकों की निष्ठा, उदारता, विद्यालय प्रबंधन, शैक्षिक वातावरण तथा अध्येय विषयों के स्तर आदि सभी की प्रशंसा की गई है।

मैक्समूलर ने एक स्थान पर लिखा है कि अंग्रेजों के भारत में आने से पूर्व केवल बंगाल में ही 80000 प्राथमिक विद्यालय थे। बम्बई प्रेसीडेंसी की परिषद् के सदस्य प्रेन्दुरग्रस्ट ने 1821 में भारतीय शिक्षा का विवरण देते हुए लिखा है कि उस समय ऐसा कोई गांव नहीं था जहाँ विद्यालय न हो, बड़े गाँवों में एकाधिक विद्यालय भी थे, जहाँ सभी जाति और वर्गों के बालक लिखन-पढ़ने के साथ-साथ गणित तथा जीवनोपयोगी विषयों और शिल्पों का शिक्षण अपनी भाषा में मितव्ययता के साथ प्राप्त करते थे।

पंडित विद्यानिवास मिश्र जो प्राचीन पारंपरिक शिक्षा तंत्र में ही दीक्षित हुए थे, लिखते हैं कि शिक्षा की पहली संस्था घर ही थी, जहाँ बालकों को वाचिक शिक्षा दी जाती थी। उन्हें विविध प्रकार के गीत, भजन, श्लोक, प्रेरक कथावार्ता आदि कंठस्थ करवा दिए जाते थे, जो उन्हें आजीवन संस्कारित बनाए रहते थे। 'निष्क्रमण संस्कार' के बाद जब बालक घर से बाहर निकलने लगते थे, तो खेतों, मैदानों, बाग-बगीचों में सभी वृद्धजन सभी बालकों को अपने बालकों के समान ही संस्कारित करते रहते थे, जो जिस विषय का जितना जानकार होता था, वह अपने ज्ञान, कौशल और हुनर की शिक्षा अपने परिवेश के सभी बालकों को नि:शुल्क देने को तत्पर रहता था, जिससे सभी बालक अपने पर्यावरण के सभी पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं से परिचित हो जाते थे और सबसे बड़ी बात यह थी कि कोई भी अपने ज्ञान-दान के लिए मूल्य नहीं माँगता था। अंग्रेजों के आने से पहले इस देश में ज्ञान का व्यापार नहीं होता था और न ही कवि, लेखक अपनी रचना के उपयोग के लिए रॉयल्टी माँगता था। वस्तुत: अंग्रेजी शिक्षा के सार्वभौम होने से पहले भारतीय शिक्षा समाज संचालित, समाज संपोषित और समाज समर्पित थी। उस पर किसी राजा या सरकार का नियंत्रण नहीं था। समाज के सभी सदस्य अपनी आर्थिक, स्थिति के अनुरूप विद्यालय, शिक्षक और शिक्षार्थियों की आर्थिक सेवा करते थे। तब समाजवाद तो नहीं था, चाहे वे राजा या सामंत हो या सामान्य जन सभी में सामाजिकता भरपूर थी, जब कि आज समाजवाद का नारा तो है, पर सामाजिकता का पूरा अभाव दिखाई देता। हर व्यक्ति अपने अहंकार में अंधा है, अपने स्वार्थ में निमग्न है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था प्रारंभ से ही अध्यापक केन्द्रित, अध्यापक नियंत्रित और

अनुशासित रही है। क्योंकि अध्यापक अर्थात् आचार्य, उपाध्याय या गुरु कभी किसी का चाकर नहीं रहा और न ही उसने कभी किसी से वेतन माँगा है। वैदिकोत्तर काल में कुछ ग्रंथों में ऐसे अध्यापकों के उल्लेख अवश्य मिलते हैं, जो किसी विषय के अध्यापन के लिए सुनिश्चित शुल्क माँगते थे, परन्तु ऐसे अध्यापक अपवाद स्वरूप ही हुआ करते थे। वस्तुतः भारतीय शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक या शिक्षक ही सम्पूर्ण शैक्षिक क्रिया-कलाप का मेरुदंड था। अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था के देश में स्थापित होने से पूर्व सामान्यतः अभिभावक अपने बालक को लेकर पाठशाला में जाता था तो अध्यापक शुभ मुहूर्त देखकर उसका 'वेदारम्भ संस्कार' करता था, अर्थात् उसे वर्णमाला के वर्णों के लेखन और वाचन का संस्कार देता था। बालक की उंगली पकड़कर रेत या जमीन पर या सम्पन्न घरों में चावलभरी थालियों पर वर्णलेखन का सस्वर अभ्यास करवाता था। फिर बालक को पाटी या पट्टी पर सरकंडे की कलम से सुलेख का अभ्यास करवाता था, साथ ही बारह-खड़ी (प्रत्येक व्यंजन वर्ण को सभी मात्राओं के साथ) का सामूहिक मुखर-अभ्यास करवाता था।

इसी प्रकार सौ तक अंकों और बाद में पहाड़े का मुखर अभ्यास सभी बालक सामूहिक रूप से करते थे। इस नीति से सभी छात्रों में लेखन-वाचन तथा गणित के मूलभूत कौशलों को स्थापित कर दिया जाता था। डॉ. ए.एस. आल्तेकर ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति' (वाराणसी 1968) में 'द्विसंधान महाकाव्य' (3-24) और प्रद्युम्न चरित महाकाव्य (5-6) से जो निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है, वह वर्ण और अंक शिक्षण की इसी परंपरा की प्राचीनता को प्रमाणित करता है:

लिपिं ससंख्यामपि वृत्तचौलः समाप्य वृत्तोपनय क्रमेण।
ब्रह्माचरन् षोडश वर्ष बद्धमादत्त विद्या कृत बद्ध सेवः।।

प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था का शिलान्यास वस्तुतः वैदिक काल के संहिता काल में ही हो चुका था। डॉ. ए.एस. आल्तेकर के अनुसार तो भारत में भारतीय आर्य भाषा के विकास के पूर्व भारत-ईरानी काल में ही एक प्रकार की शिक्षा व्यवस्था का सूत्रपात हो चुका था। क्योंकि ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में (x, 109,3,7,4) शिक्षा व्यवस्था के कुछ संकेत मिल जाते हैं। अथर्ववेद में स्पष्टतः 'उपनयन' शब्द का प्रयोग मिलता है, जो औपचारिक रूप से शिक्षारम्भ का वाचक माना जाता है। अर्थववेद के 11वें कांड मे 5वें सूक्त में एक मंत्र है :

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भयनतः।
ते रात्रीस्तिस्र उदरे विभर्तितं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।। (अथर्ववेद 11.5.3.)

आशय यह है कि गुरु के पास लाए गए ब्रह्मचारी को यह पहले अपने गर्भ में धारण करता है, तीन रात अपने उदर में रखता है। जब वह गर्भ से बाहर आता है तो उसे देखने के लिए देवताओं की भीड़ जमा हो जाती है। इसके पश्चात् ब्रह्मचारी 'द्विज' बन जाता है। क्योंकि गुरु द्वारा किए गए इस संस्कार से सामान्य बालक विद्यार्जन के योग्य बनता है। मनुस्मृति में कहा गया है: जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते। वेदाभ्यासेन वै विप्रा ब्रह्मं जानाति ब्राह्मणः।। आशय यह है कि जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं, परन्तु संस्कारों से ही वह द्विज बनता है। अर्थात् शिक्षा ही हमें एक नया जन्म देती है, जिसका आधार संस्कार होता है। यद्यपि उपनयन संस्कार के पश्चात् ही सामान्यतः औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ माना जाता था, परन्तु वैदिक ऋषियों ने आजन्म और आजीवन शिक्षा की परिकल्पना भी की थी, इसीलिए उन्होंने निम्नलिखित सोलह संस्कारों का विधान किया था: 1. गर्भाधान 2. पुंसवन 3. सीमन्तोन्नयन (जन्म से पूर्व संस्कार) 4. जातकर्म 5. नामकरण 6. निष्क्रमण 7. अन्नप्राशन 8. चूडाकर्म 9. कर्णवेध 10. उपनयन 11. वेदारम्भ 12. समावर्तन 13. केशान्त 14. वानप्रस्थ 15. सन्यास 16. अंत्येष्टि

यहाँ उल्लेखनीय है कि वैदिक काल में उक्त सोलह संस्कारों के अतिरिक्त कुछ अन्य संस्कारों का विधान भी हमें गृह्य सूत्रों में मिलता है, जिनमें से कुछ संस्कार तो सभी छात्रों के लिए थे, परन्तु कुछ विशेष छात्रों के लिए थे, जैसे-मेघाजनन संस्कार, उपाकर्म या श्रावणी संस्कार, सर्व सामान्य संस्कार थे। परन्तु शुक्रिय संस्कार, शाक्वर संस्कार, ब्रातिक संस्कार, औपनिषद संस्कार आदि विशिष्ट छात्रों के लिए संस्कार थे। डॉ. राधा कुमुद मुकर्जी के अनुसार तीन दिनों की सावित्री ब्रतचर्या के पश्चात् मेघाजनन संस्कार के साथ उपनयन संस्कार की परिसमाप्ति होती थी।

आशय यह है कि संहिता काल और सूत्र काल के बीच विविध प्रकार के संस्कारों को विकसित किया जा चुका था, जो अपनी प्रकृति में शैक्षिक थे। अतः गर्भाधान संस्कार को प्रथम शैक्षिक संस्कार कहा जा सकता है। गृह्य सूत्रों के अनुसार विशेष ऋतु में समुचित मुहूर्त देखकर दम्पति को कतिपय नियमों के अनुसार गर्भाधान करना चाहिए तथा गृहसूत्रों में पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार द्वारा गर्भस्थ पिंड को संस्कारित करने का विधान मिलता है जिसे शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा सकता है। इसी

प्रकार जात-कर्म के पश्चात् उपनयन संस्कार तक की सारी व्यवस्था शिशु की गृहस्थ शिक्षा मानी जाती थी और वह माता-पिता का कर्त्तव्य माना जाता था, तत्पश्चात् वेदारंभ से केशान्त तक के संस्कार गुरु-गृह में चलते थे। इस दृष्टि से गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि तक के संस्कारों को आजीवन शिक्षा के रूप में देखा जा सकता है।

वस्तुतः आजकल जिसे आजीवन शिक्षा कहा जाता है, उसकी मूल दृष्टि वैदिक ऋषियों द्वारा विकसित शिक्षा व्यवस्था में देखी जा सकती है। इस संदर्भ में समावर्तन के समय कुलपति आचार्य द्वारा दिए गए उपदेश/आदेश विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें कहा जाता था-सत्यंवद्, धर्म चर, स्वाध्यान्मा प्रमद..., अर्थात् सत्य बोलो, ध र्माचरण करो और जीवन भर स्वाध्याय करते रहो, उसमें किसी प्रकार का प्रमाद मत करना। इसी उपदेश में आगे कहा गया है, यदि किसी विषय में कोई शंका हो तो किसी योग्य विद्वान से अपनी शंका का समाधान कर लेना चाहिए। इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में जिन संस्कारों की विवेचना है, उन पर आधुनिक शिक्षाशास्त्रियों को गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से सारा वैदिक वाङ्मय अरण्यों (वनों) में ही विकसित हुआ था और अरण्य जीवन के लिए 'अग्नि' उपासना महत्त्वपूर्ण ही नहीं, अपितु अपरिहार्य थी। इसीलिए उस समय 'यज्ञ-संस्कृति' विकसित हुई थी तथा विविध प्रकार के यज्ञों के आयोजन के लिए विविध प्रकार के क्रिया-कलापों का विधान किया गया था। इसीलिए यजुर्वेद ने 'यज्ञ' को श्रेष्ठतम कर्म कहा है। (यज्ञों वै श्रेष्ठतमं कर्म, शु. यजुर्वेद 1.1.) और यज्ञ की वेदी के आस-पास बैठकर ही वैदिक ऋषिगणों ने न केवल मंत्रों की संहिताएँ बनाई थी, अपितु उनकी व्याख्या और शिक्षा के लिए छहों वेदांगों को विकसित किया था, जिन्हें 'पाणिनि-शिक्षा' में इस प्रकार बताया गया है:

छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तौ, कल्पोऽ पठ्यते।
ज्यौतिषमयनं चक्षु, निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षाघ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्मधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।

अर्थात् छंदशास्त्र वेद पुरुष के पाद हैं, कल्पशास्त्र उसके हाथ हैं। ज्योतिषशास्त्र नेत्र, निरुक्त शास्त्र श्रोत्र, शिक्षा घ्राण और व्याकरण मुख है। आशय यह है कि संसार में सबसे पहले जिन शास्त्रों का विकास वैदिक ऋषियों ने किया था, वे यज्ञ-संस्कृति की मूलभूत वैदिक संहिताओं के अध्ययन-अध्यापन की आधारभूमि ही नहीं, अपितु

यज्ञों को निर्दोष रूप में सम्पन्न करने के लिए आवश्यक माने जाते थे। परवर्ती कालों में जो शास्त्र साहित्य, न केवल संस्कृत में, अपितु बौद्धों की पाली तथा जैनों की अर्धमागधी में विकसित हुए उनकी मूलप्रेरणा और आदर्श उक्त षड् वेदांग ही थे। इसी लिए जैन-बौद्ध-काल में भी वेद और वेदांगों का अध्ययन प्राथमिक शिक्षा में अनिवार्य रूप से चलता रहा। यद्यपि बाद में देश काल के परिवर्तनों के साथ जैसे-जैसे अरण्य संस्कृति के साथ पौर (ग्राम) संस्कृति और नागर-संस्कृति विकसित होती गई, वैसे-वैसे नए-नए शास्त्र और शिल्प विकसित होते गए। परन्तु भारतीय शिक्षा व्यवस्था में वेद-वेदांगों का अध्ययन-अध्यापन मध्यकाल तक निर्बाध रूप से चलता रहा।

वैदिक वाङमय के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रारंभिक वैदिक काल अर्थात् संहिताकाल में ही बालक-बालिकाओं के शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए कई प्रकार की संस्थाएँ अस्तित्व में आ गयी थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभिक चरणों में तो याज्ञिक क्रियाओं के साथ वैदिक ऋचाओं का पाठ और गान ही प्रमुख रूप से चलता था। अत: वैदिक ऋचाओं का पाठ और गान अध्ययन-अध्यापक के प्रमुख विषय थे। यद्यपि ऋग्वेद में गाथा, नाराशंसी जैसी विधाओं का उल्लेख मिलता है (ऋग्वेद ix 85.6 तथा x 85.6), तैत्तरीय संहिता में व्याकरण की भी चर्चा है। (तै.सं. x 4.7.3)। इसी प्रकार अथर्ववेद में इन विधाओं के अतिरिक्त 'इतिहास' 'पुराण' का भी उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण (xi, 3.88) तथा छांदोग्य उपनिषद (vii 1.2.) में चारों वेदों के साथ-साथ 'अनुशासन', 'वाकोवाक्य' के साथ, आंगिरस विद्या, सर्प-विद्या, माया विद्या आदि विद्याओं का उल्लेख है। परन्तु उल्लेख्य है कि इनमें वेदांगों का स्पष्टत: उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, इनके मूल रूपों की चर्चा अवश्य मिलती है; जैसे-'अनुशासन' की व्याख्या करते हुए सायण ने उसे शब्द-व्युत्पत्ति से संबंधित शास्त्र बताया है जो बाद में व्याकरण और निरूक्त के रूप में दो वेदांगों में समाहित हो गया। वैदिक वांङ्मय और पाणिनि की अष्टाध्यायी के आधार पर आर.के. मुखर्जी ने अपने ग्रंथ एंसियेंट इंडियन एजुकेशन (पी. 77-88) में शाखा, चरण, परिषद, कुल और गोत्र नामक शैक्षिक संस्थाओं की चर्चा की है, जिन्हें आज की भाषा में पाठशाला, सभा, अकादमी आदि के रूप में समझा जा सकता है। वस्तुत: इन्हीं संस्थाओं में विविध प्रकार के धार्मिक और जीवनोपयोगी विषयों पर विचार-विमर्श होता था, शास्त्रार्थ चलते थे, और इन्हीं के परिणामस्वरूप बाद में शिक्षण-प्रशिक्षण की दृष्टि से उपयोगी सूत्र-साहित्य का विकास किया जा सका था।

यहाँ इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि वेदकालीन शिक्षा-व्यवस्था व शैक्षिक शास्त्र जैन-बौद्ध काल में और भी अधिक विकसित होते गए और अंत में 'तक्षशिला विश्वविद्यालय' के रूप में एक अंतरराष्ट्रीय शैक्षिक संस्था के रूप में रूपायित हुए। वस्तुतः 'तक्षशिला' अपनी आयुर्वेदीय शिक्षा के लिए अत्यंत प्रसिद्ध था, जहाँ बुद्ध के समकालीन 'जीवक' ने शिक्षा प्राप्त की थीं इसी प्रकार यह विश्वविद्यालय अपनी 'विधि' की शिक्षा के लिए विख्यात था, जहाँ उज्जैन जैसे सुदूर प्रदेश से भी शिक्षार्थी अध्ययन के लिए आते थे, जैसा कि कारन्दीय जातक में उल्लिखित है। (देखिये-जातक खंड VI, पृ. 392, III-171-71) यह विश्वविद्यालय राजनीति तथा सैन्य विद्या के शिक्षण के लिए भी अत्यंत प्रसिद्ध था। एक जातक (II. पृ. 457) के अनुसार देश के विभिन्न राज्यों के 103 राजकुमार यहाँ आते थे, तथा यहाँ वेद-वेदांगों की शिक्षा के लिए भी अनेक स्थानों से ब्राह्मण आते थे। प्राचीन पाली ग्रंथों में अध्ययन के विषयों में वेदत्रयी का उल्लेख है और चतुर्थवेद (अथर्ववेद) का भी उल्लेख मिलता है, इतना ही नहीं, विदपुष्टिक के चुल्लवगा (V. 33.2)-71) में वेदांगों की भी चर्चा मिलती है।

जातकों के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैन-बौद्धकाल में शिक्षा का जो रूप विकसित हुआ था, वह पूर्ववर्ती वैदिक शिक्षा व्यवस्था का ही विकसित परिपाक था, इसीलिए तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय में प्राचीन वैदिक शिक्षा के साथ परावर्ती काल में विकसित विविध-शैक्षिक विषयों का, जिन्हें सिप्प (शिल्प), विज्जा (विद्या) और कला कहा जाता था, अध्ययन अध्यापन किया जाता था। अनेक जातकों में तक्षशिला में पढ़ाए-जाने वाले विषयों को सूचीबद्ध किया गया है, जिनमें पारंपरिक वेदत्रयी और अठारह शास्त्रों का अर्थात् सभी पारंपरिक विषयों के नाम मिलते हैं, जैसे कि वीं फौसबॉल द्वारा सम्पादित जातक (1905) की जातक संख्या, 338 में कहा गया है, ''तयो वेदे सब्ब सिप्पानि अथवा अट्ठारसन्तम विज्जाट्ठानानाम्' (जातक संख्या 50)। इसी प्रकार मिलिन्दपञ्हो में उस समय प्रचलित शैक्षिक विषयों की लम्बी सूची मिलती है, जिसमें श्रुति, स्मृति, वेदांग, पुराण सांख्य, योग आदि के साथ आयुर्वेद, धनुर्वेद, तंत्र-मंत्र सामुद्रिक शास्त्र, हस्ति सूत्र, आखेट विद्या, संगीत और अठारह सिप्प अर्थात् शिल्पों का उल्लेख मिलता है। मिलिन्दपञ्हो में आदर्श-शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों के लक्षणों के साथ देसी भाषा और मिलिक्ख भाषा म्लेच्छ भाषा के शिक्षण की बात भी की गई है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक काल के पश्चात जैन-बौद्ध काल में भारतीय शिक्षा व्यवस्था न केवल परिवर्तित हुई, अपितु परिवर्धित और विकसित भी होती गई। भारतीय जीवन अरण्यों से निकलकर गांवों, पल्लियों और नगरों में चलने लगा, तो समाज की नई आशाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप शैक्षिक व्यवस्था का रूपांतरण भी होता गया। जैन-बौद्ध काल की शिक्षा व्यवस्था, पूर्ववर्ती वैदिक शिक्षा का विस्तार और विकास ही है, जिसमें शिक्षा-व्यवस्था के प्राथमिक और उच्च शिक्षा, दोनों स्तरों पर बहुत परिवर्तन हुए। शिक्षा में वेद-वेदांगों के अतिरिक्त अन्य अनेक जीवनोपयोगी विषयों को भी जोड़ा गया है जिन्हें पाली सिप्प या शिल्प और विज्जम या विद्या कहा जाता था।

प्रारंभिक वैदिक काल में शिक्षा व्यवस्था में शुल्क लेने-देने की प्रथा नहीं थी। परंतु पाली साहित्य में इस बात के संकेत मिलते हैं, कि कुछ शिक्षक ऐसे भी थे जो छात्रों को किसी विशेष 'विषय' के अध्यापन के लिए शुल्क लेते थे। राजपुत्रों से एक हजार मुद्रा के विधान का उल्लेख हमें पंचबुद्ध जातक (सं. 55) में मिलता है। परन्तु जो शिक्षार्थी शुल्क देने में असमर्थ होते थे, वे 'धम्मन्तेवासिक' कहलाते थे, तथा शुल्क के बदले वे अपने शिक्षक की सेवा करते थे। इस प्रकार धनी और निर्धन, दोनों प्रकार के छात्र अपनी क्षमताओं के अनुरूप शिक्षा प्राप्त कर सकते थे।

भारतीय वांङमय के इतिहास में 'आगम साहित्य' का महत्वपूर्ण स्थान है, जिसे सामान्यत: वैष्णवागम, शैवागम, शाक्तागम, बौद्धागम और जैनागम नामों से पहचाना जाता है। भारतीय आगम शास्त्र में हमें व्याकरण आदि शास्त्रों के सूत्र-साहित्य के समान सूत्र और उनकी टीका टिप्पणियों, भाष्य-महाभाष्यों के अतिरिक्त स्वतंत्र ग्रंथ भी मिलते हैं। इस प्रकार के ग्रंथों का प्रचुर मात्रा में लेखन इस बात का प्रमाण है कि उस युग में भारतीय शिक्षा न केवल सार्वभौम थी अपितु वह जीवन के सभी पक्षों से संबंधित भी थी, जिनमें कुछ विषय तो ऐसे मिलते हैं, जिन्हें आज की किसी स्वदेशी या विदेशी विद्यालय या विश्वविद्यालय में कोई महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है; जैसे कामसूत्र और उस पर आधारित अनेक कामशास्त्रीय ग्रंथ, सामुद्रिक शास्त्र, पुरुष लक्षण शास्त्र, स्त्री-लक्षण शास्त्र (नायिका भेद) काव्य शास्त्र, नाट्यशास्त्र, अभिनय और नृत्य मुद्रा, तांत्रिक मुद्रा आदि।

यद्यपि भारतीय शिक्षा व्यवस्था प्राथमिक और उच्च, दोनों स्तरों पर आद्यांत चलती रही है, परन्तु शिक्षा का व्यावहारिक पक्ष देशकाल के अनुरूप बदलता रहा है।

राजकुमार-राजकुमारियां और उनसे संबंधित व्यक्तियों की शिक्षा की व्यवस्था के लिए विविध विषयों के विशेषज्ञ शिक्षक उनके घर में आकर ही शिक्षा देते थे। जैसे कि अश्वघोष के बुद्ध चरित या कालिदास के रघुवंशम् आदि काव्य ग्रंथों में उल्लेख मिलता है तथा उन्हें राजाश्रय के सभी लाभ प्राप्त होते थे, जो राजाओं और सामंतों की स्थिति के अनुसार विविध प्रकार के होते थे।

उपर्युक्त औपचारिक शिक्षा वस्तुतः राजपरिवारों के बालकों की शिक्षा की व्यवस्था राज प्रासादों में होने की परंपरा हमें महाभारत में मिलती है और परवर्ती काव्य प्रबंधन जैसे वाणभट्ट की कादेननी आदि रचनाओं में दिखाई देती है। व्यावसायिक शिक्षा के साथ-साथ वैदिक काल से ही एक प्रकार की अनौपचारिक शिक्षा-तंत्र के संकेत भी हमें भारतीय साहित्य में मिलते हैं। वैदिक काल की 'चरण' संस्था संभवतः चरणशील साधुओं की परंपरा का मूल रूप है, जिसके अंतर्गत चरणशील शिक्षक और साधु, सिद्ध पुरुष अपने उपदेश देते थे, पुराण पाठ करते थे तथा अपनी प्रस्तुतियों को प्रभावी बनाने के लिए नृत्य संगीत का भी सहारा लेते तथा स्थान-स्थान घूमकर जन-सामान्य को शिक्षा प्रदान करते थे। कत्थकली नृत्य विद्या इसी प्रकार की कथावाचन कला के साथ विकसित हुई थी। वस्तुतः आज के युग में जनसंचार या मीडिया की जो भूमिका है वही भूमिका उक्त अनौपचारिक शिक्षा विधाओं की थी, जिसके परिणामस्वरूप जन सामान्य में समुचित ज्ञान, सूचनाएं और नैतिक मूल्यों का प्रचार-प्रसार किया जाता था।

यहाँ इस बात की ओर संकेत किया जा सकता है कि आगम काल में भारतीय-शिक्षा व्यवस्था भारतीय प्रायद्वीप तक सीमित नहीं रही। उसका प्रसार और प्रभाव समुचे एशिया में विशेषकर पूर्वी एशिया में देखा जा सकता है। तिब्बत, चीन, जापान, मंगोलिया, सिंहल, थाइलैंड, कोरिया आदि देशों के बौद्ध मठों में प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था का प्रभाव आज भी है, इनमें से कुछ देशों की लिपियाँ या तो ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई है या प्रभावित हैं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था के प्रसार के युग में संस्कृत के अनेक शास्त्रीय ग्रंथों का चीनी, जापानी, तिब्बती, फारसी आदि भाषाओं मे अनुवाद हुआ भी था, तथा वे वहाँ की शिक्षा व्यवस्था में अध्ययन-अध्यापन की विषय बनी थी। उल्लेखनीय है कि इन विदेशी भाषाओं का संस्कृत के काव्य ग्रंथों, अश्वघोष के 'बुद्ध चरित' जैसे बौद्ध काव्य ग्रंथों के अनुवाद के साथ, शास्त्रीय ग्रंथों का ही अनुवाद विशेष रूप से हुआ था। इन विदेशी भाषाओं में संस्कृत और पाली के

ग्रंथों में कुछ ग्रंथ तो ऐसे भी हैं, जिनके मूल ग्रंथ भारत में नष्ट हो चुके हैं परन्तु उनके अनुवाद आज भी इन भाषाओं में सुरक्षित हैं। ईसवी पूर्व 600–700 से ईसवी 600–700 शताब्दी (इसकाल को भारतीय आर्य भाषा के विकास का द्वितीय सोपान माना जाता है।) तक के बीच विकसित भारतीय वाङमय के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस युग में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए थे, विशेषकर उच्च शिक्षा के स्तर पर। इस युग में भारतीय शिक्षा–व्यवस्था का प्रसार न केवल भारतीय प्रायद्वीप तक सीमित था, अपितु वह पूरे एशिया में व्याप्त हो चुका था, विशेषकर उन देशों में जहाँ भारतीय धार्मिक सम्प्रदायों विशेषकर बौद्ध और वैदिक मतों का प्रचार हुआ था। इस युग में अध्ययन–अध्यापन के विषयों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई थी, जिनकी शिक्षा के लिए विविध प्रकार के शास्त्रीय ग्रंथों का लेखन हुआ था। क्योंकि शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर लिपि गिनती आदि के साथ वैदिक सूक्तों का अध्ययन अध्यापन होता था इसलिए ईसापूर्व 4–5 शताब्दी में ही मंत्र पाठों की अनुक्रमणिकाएं तैयार हुई थीं और वैदिक कर्मकांड की शिक्षा के लिए श्रौत सूत्र 13–14 ई.पू. शुल्व सूत्र (600 ई.पू.) प्रातिशाख्य (400 ई.पू.,) अष्टाध्यायी (400 ई.पू.) तैयार किए गए थे। इस कालावधि में महाभारत, रामायण, हरिवंश पुराण (400 ई.पू. से 400 ई.) जैसे संस्कृत के महान काव्य ग्रंथों के साथ बौद्धों के त्रिपिटक ग्रंथ, जैनों का तत्त्वाधिगम सूत्र, तत्त्वार्थ भाष्य (100 ई.) आदि की रचनाएं भी हुई थीं। इसी समय सीमा में (700 ई.पू. से 600 ई.) पाणिनि की अष्टाध्यायी से भिन्न नवीन व्याकरण ग्रंथों, जैसे व्यातंत्र व्याकरण (100 ई.), विभिन्न शिक्षा–ग्रंथ, कोष जैसे अमरकोश अश्व चिकित्सा (1000 ई.) कृषि पराशर, हस्त्यायुर्वेद के साथ–साथ अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों के सूत्रों और तांत्रिक ग्रंथों की रचना भी इसीलिए हुई थी। क्योंकि ये सभी उच्च शिक्षा के स्तर पर अध्ययन–अध्यापन के विषय थे।

उपर्युक्त ग्रंथों और तत्कालीन स्थापत्य और मूर्तकलाओं के प्राप्त अवशेषों के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि बौद्ध, जैन आगमकाल में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए थे जो देश–काल की नवीन आवश्यकताओं के अनुरूप थे। परंतु उल्लेखनीय है कि शिक्षा का मूल दर्शन वही था, जिनका सूत्रपात वैदिक ऋषियों द्वारा वैदिक काल में ही हो चुका था जिसकी कुछ विशेषताओं को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

- प्राथमिक और उच्च शिक्षा का आयोजन और संचालन शिक्षक के अधीन था।

शिक्षक शिक्षार्थी की अवस्था, क्षमता तथा आवश्यकता को दृष्टि में रखकर शिक्षा देता था।

- संपूर्ण शिक्षा-शिक्षक-शिक्षार्थी के बीच चलन वाला व्यापार था, जिसे संगीत, नृत्य आदि को आज की भाषा में 'गुरु-शिष्य परंपरा' कहा जाता है।
- शिक्षा का माध्यम भाषा उच्च स्तर पर सर्वत्र संस्कृत थी, परंतु शिक्षक छात्रों की आवश्यकता के अनुरूप, पाली आदि प्राकृत भाषाओं का प्रयोग भी कर सकता था और परवर्तीकाल में (1000 ई.) लोक भाषाओं का प्रयोग भी शिक्षण के लिए किया जाता था। इसीलिए पाली आदि प्राकृत भाषाओं में शास्त्रीय ग्रन्थों का लेखन अत्यंत अल्प मात्रा में मिलता है। इन भाषाओं के व्याकरण ग्रंथ भी संस्कृत में ही मिलते हैं।
- प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर वेद और वेदांगों का शिक्षण प्रधान था। परंतु उच्च शिक्षा शिक्षार्थी की रुचि और आवश्यकता के अनुसार दी जाती थी। आज की शिक्षा व्यवस्था की तरह उसकी कोई निश्चित कालावधि नहीं थी।
- सम्पूर्ण शिक्षा वाचिक थी, उसमें श्रवण मनन और निदिध्यासन का महत्वपूर्ण स्थान था। इसीलिए प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में पाठ्य-पुस्तक जैसी शिक्षण सामग्री का अभाव था। ग्रंथ लिखे इसीलिए जाते थे कि ज्ञान को सुरक्षित रखा जा सके तथा आवश्यकतानुसार उनकी प्रतिलिपि तैयार की जा सके। इसके लिए राजतंत्रों में 'लिहिया व्यवस्था' थी, जिसमें अनेक प्रतिलिपिकार रहते दो थे जो पांडुलिपियों का आदेशानुसार अनुलेखन करते थे। यह प्रक्रिया मठों और आश्रमों में भी चलती थी। जैन धर्म में तो प्राचीन पाण्डुलिपियों की नई प्रतिलिपि तैयार करने की प्रथा को बड़ा पुण्य कर्म माना जाता है। इसीलिए आज भी जैन मंदिरों में प्राचीन पाण्डुलिपियों के भण्डार मिलते हैं।

बौद्ध-जैन आगम काल तक आते-आते देश की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों में जो परिवर्तन घटित हो गए थे, उनके अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में भी परिवर्तन आते गए। वैदिक कालीन आश्रम शिक्षा व्यवस्था निर्मूल तो नहीं हुई थी, परन्तु अब शिक्षा के केन्द्र गांवों, कस्बों (पल्लियों) तथा नगरों तक में स्थापित हो गए थे। शिक्षा में नए-नए विषयों का समावेश हो गया था, जिनके विशेषज्ञ राजनगरों या राजधानियों में रहने लगे थे। बौद्धों और जैनों के विहारों तथा सनातन धर्मानित्रंणियों के मंदिर, मठों में अपने-अपने सिद्धान्तों और व्यवहारों की विशेष-शिक्षा की व्यवस्था तो

थी ही, यहाँ अनेक कलाओं और शिल्पों की शिक्षा भी दी जाती थी।

भारत के विभिन्न राज्यों के राजाओं के दरवारों में विविधि विषयों, कलाओं और शिल्पों के विशेषज्ञ विद्वान न केवल राजाओं को समय-समय पर परामर्श देते थे, अपितु राजकुमार, राजकुमारियों, उनके सहचर सखा-सखियों को शिक्षा प्रदान भी करते थे तथा, अपने-अपने आवासों पर जिज्ञासु विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मनुस्मृति जैसी स्मृति ग्रंथों तथा तत्कालीन अन्य ग्रंथों में इस बात के विपुल प्रमाण है कि सभी राजदरबारों में श्रेष्ठ विद्वानों, कवियों, कलाकारों, शिल्पकारों आदि को सम्मानित किया जाता था। उन्हें राजाश्रय भी प्रदान किया जाता था जिससे वे निश्चिंत होकर अपनी ज्ञान साधना कर सकते थे, तथा उनके पास आने वाले जिज्ञासुओं को अपने शास्त्र या विषय का ज्ञान प्रदान कर सकते थे।

ईसवी सन् से 400-500 वर्ष पूर्व से लेकर अंतिम मुगल बादशाह तक के दरबारों में रहने वाले विविध विषयों के विशेषज्ञ विद्वानों का भारतीय शिक्षा व्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। चंद्रगुप्त मौर्य के दरबारी, चाणक्य, विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्न, समुद्र गुप्त, स्कन्ध गुप्त, हर्ष वर्धन, राजाभोज, सिद्धराज आदि द्वारा विद्वानों, कलाकारों, शास्त्रज्ञों, आचार्यों आदि को आश्रय प्रदान करने की कथाएँ आज भी लोक में प्रचलित हैं। प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अध्ययन के आधार पर यह निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि वैदिक काल से लेकर अंग्रेजों के भारत में आगमन तक भारत में शिक्षा सार्वभौम थी, उसका स्तर श्रेष्ठ था, व्यवस्था मितव्ययी थी, तथा वह सभी के लिए खुली थी, इसीलिए भारत में अनेक देशों के छात्र यहाँ अध्ययनार्थ आते थे।

वैदिकोत्तर काल में प्राथमिक शिक्षा वैदिक आश्रमों के समान ही गाँवों में दी जाने लगी थी, जहाँ सभी वर्णों और वर्गों के बालक-बालिका वर्णाक्षर ज्ञान, गणित तथा, सामान्य ज्ञान, नैतिक ज्ञान आदि प्राप्त कर सकते थे। सभी अभिभावक अपने बालक-बालिकाओं को अध्ययनार्थ भेजते थे। किन्तु बड़े होने पर वे अपने माता-पिता की आज्ञा से अपनी रुचि के विषय के अध्ययन के लिए निकटस्थ या दूरस्थ विद्या केन्द्रों, राजधानियों जैसे बड़े नगरों में चले जाते थे तथा गुरु-गृह या गुरुकुल में गुरु के समय (शर्त) के अनुसार शिक्षा ग्रहण करने लगते थे। यदि वे किसी गुरु की शिक्षा से संतुष्ट नहीं होते तो वे किसी अन्य गुरु के पास जा सकते थे। बौद्ध जैन विहारों में भी प्रवेश के लिए माता-पिता की आज्ञा अनिवार्य थी।

जैसे छात्र अपने अध्यापक से असंतुष्ट होकर नया गुरु खोजने के लिए स्वतंत्र था,

वैसे ही राजाश्रयी विद्वान भी नया आश्रय खोजने के लिए मुक्त था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राजाश्रय या तो वंशानुक्रम के अनुसार प्राप्त होता था, या शास्त्रार्थ में विजयी होने पर। जैसा कि कहा जाता है- स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते।

यहाँ उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारत में जो शिक्षा व्यवस्था थी उनका वास्तविक स्वरूप प्राचीन वाङ्मय के अध्ययन के आधार पर ही समझा जा सकता है। परंतु दुर्भाग्य की बात है, पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय वाङ्मय में उल्लिखित तथ्यों और तिथियों को कभी प्रामाणिक नहीं माना। इसीलिए इन विदेशी विद्वानों की छत्रछाया में शिक्षित भारतीय विद्वानों ने भी उन्हीं का अन्धानुकरण किया है। परिणाम स्वरूप प्राचीनकाल की शिक्षा व्यवस्था का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि जीवंत परम्पराएं इतिहासकारों की मुखापेक्षी नहीं होती। हमें अपनी विरासत को अपनी दृष्टि से देखने-परखने की आवश्यकता है, जिससे हमें अपने वास्तविक इतिहास का बोध हो सके।

10वीं शताब्दी में जब पश्चिमी एशिया से इस्लाम भारत में आया, तब भी प्रचीन शिक्षा व्यवस्था अपने मूल रूप में सम्पूर्ण भारत में चल रही थी। विक्रमादित्य के दरबार की जो परंपरा थी उसकी प्रतिच्छाया हमें मालवा के राजाभोज, गुजरात के सिद्धराज कुमार पाल, दक्षिण में चोल चालुक्य तथा कृष्ण राय (हम्पी), उत्कल प्रदेश के नृसिंह देव आदि राजा महाराजाओं के दरबारों में भी दिखाई देती है, वही परंपरा, परवर्तीकाल में अल्लाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद बिन तुगलक, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब आदि मुसलमान शासकों के दरवारों में भी प्रतिबिम्बित दिखाई देती हैं।

इस्लाम के भारत में आने के बाद जो मदरसा शिक्षा व्यवस्था भारत में आई, वह मूलतः इस्लाम की शिक्षा के लिए थी। परंतु उस पर भी प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था का प्रभाव देखा जा सकता है। क्योंकि इस्लाम के उदय से पूर्व अरब देशों और ईरान में भारतीय प्रभाव के प्रभूत प्रमाण मिलते हैं। इसी तरह 10-12 शताब्दी में पश्चिम एशिया से मुसलमानों के आने के परिणाम स्वरूप पश्चिमोत्तर भारत के खान-पान, पोशाक आदि में ईरानी संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है। बाटी के स्थान रोटी आ गई, आपूप और मोदक के स्थान पर बालू शाही, इमरती, जलेबी, बर्फी आ गई। इतना ही नहीं, अरबी-फारसी के कुछ शास्त्रों और उपकरणों का प्रवेश भी भारत में हुआ, जैसे होरा शास्त्र रमल शास्त्र रहर आदि। दो संस्कृतियों के संगम से प्राचीन भारतीय परंपराएँ बदली अवश्य परंतु उनका मूलोच्छेद मुसलमान शासकों ने कभी नहीं किया।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि मुसलमानों के राज-काल में आधुनिक भारत का सम्पूर्ण भूभाग कभी भी किसी मुसलमान शासक के अधीन नहीं रहा। अधिकांश भू-भाग में पुराने राजघराने विद्यमान थे, तथा उन प्रदेशों में प्राचीन शिक्षा व्यवस्था विद्यमान थी। अंग्रेज अधिकारियों ने 18-19वीं शताब्दियों में भारत में जो शैक्षिक सर्वेक्षण किए तथा उनसे प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा व्यवस्था का जो स्वरूप सामने आया उससे न केवल स्वयं अंग्रेज अधिकारी आश्चर्यचकित थे, अपितु आज हमें भी आश्चर्य होता है कि 18-19वीं शताब्दी में भारत में शिक्षा का स्तर आज की शिक्षा से न केवल श्रेष्ठतर था, अपितु साक्षरता का अनुपात आज की साक्षरता के अनुपात से अधिक था। और तत्कालीन यूरोप की साक्षरता भी अधिक थी, जिसे कई अंग्रेज विद्वानों ने स्वीकार किया है। प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था का ही परिणाम था कि भारत की प्रतिभा और मौलिक चिन्तन की क्षमता जीवंत बनी रही जिसके कारण भारत में नव जागरण आया और स्वराज की कामना हुई।

अंत में इस ओर ध्यान आर्कषित किया जा सकता है कि 10वीं शताब्दी के आस-पास आधुनिक भारतीय भाषाएँ, साहित्यक भाषाओं के रूप में स्थापित होने लगी थीं। यह कार्य दक्षिण भारत में बहुत पहले हो चुका था। सर्वप्रथम तमिल फिर कन्नड़, तेलुगू और अंत में मलयालम में न केवल ललित साहित्य लिखा जाने लगा अपितु इनमें संस्कृत की शास्त्र लेखन की परम्परा भी अनूदित रूप में आने लगी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय में संस्कृत का सार्वभौम साम्राज्य क्षीण होने लगा था। अत: सर्वसामान्य को शास्त्रों का परिचय कराने के लिए आधुनिक भाषाओं में शास्त्र लेखन की परम्परा का शुभारम्भ हुआ था। यह केवल दक्षिण भारत में ही नहीं हुआ अपितु उत्तर भारत में भी विशेषकर हिन्दी-उर्दू की जननी खड़ भारवा (षड्भाषा-वृजभाषा) में भी बड़े व्यापक स्तर पर हुआ। भाखा में काव्यशास्त्र, कोश-पिंगल के साथ अनेकानेक प्राचीन शास्त्रों और नवीन जीवनोपयोगी विषयों पर शास्त्रीय ग्रंथ लिखे जाने लगे। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने लेख में बताया है कि वृज भाषा में रमल, होरा, जवाहरात की तौल विधि, चौपड़ चक्र, युद्ध के रिति रिवाजों का वर्णन, दफ्तर के कार्य-विवरण, पक्षियों की चिकित्सा, धनुर्वेद, वाणिज्य भेद, बागवानी, शतरंज खेलने की विधियाँ, जड़ी-बूटियों का वर्णन, रत्न परीक्षा, शकुन शास्त्र, पहलवानी, सभाओं के कायदा-कानून, राजनीति, गणित आदि के साथ नायक-नायिका भेद सामुद्रिक शास्त्र, संगीत आदि अनेक विषयों पर शास्त्रीय ग्रंथ लिखे गये, क्योंकि मुस्लिमकाल में प्राथमिक शिक्षा का

माध्यम लोक भाषाएँ थी। अत: लोक भाषाओं में शास्त्रीय साहित्य प्रभूत मात्रा में लिखा जाने लगा, जिसमें से अधिकांश दातोस संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों पर आधारित है या फारसी की रचनाओं पर आधारित है। परंतु दुर्भाग्य है कि मध्यकालीन हिन्दी का अधिकांश शास्त्रीय साहित्य पाण्डुलिपियों के रूप में रखा हुआ है, उसके प्रकाशन की ओर कोई प्रयत्न नहीं हुआ।

प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था जो अंग्रेजों के भारत में आने तक निर्वाध सूत्र से चलती रही, परिवर्तन और परिवर्धित होती रही, वह अंग्रेजों की कुदृष्टि और कुटिल नीतियों के कारण क्षत-विक्षत हो गई, और स्वतंत्र भारत में इसके उत्थान के लिए अपेक्षित प्रयास नहीं किए।

संदर्भ

अध्यापन: भारतीय दृष्टि, विद्या निवास मिश्र, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, 1998, नई दिल्ली, पृ. 42-43

— वही — 12-13

देखिए A beautiful Tree, धर्मपाल

अध्यापन: भारतीय दृष्टि, विद्या निवास मिश्र, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, 1998, नई दिल्ली, पृ. 41-42

पोजीशन ऑफ लैंगुएज इन स्कूल करीकुलुम इन इंडिया, एम.जी. चतुर्वेदी, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, पृ. 14

अध्यापन: भारतीय दृष्टि, विद्या निवास मिश्र, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, 1998, नई दिल्ली, पृ. 80

देखिए ऐडम की रिपोर्ट, बंगाल और बिहार में प्राथमिक शिक्षा

पोजीशन ऑफ लैंगुएज इन स्कूल करीकुलुम इन इंडिया, एम.जी. चतुर्वेदी, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, पृ. 14

नरुला एंड नायक, हिस्ट्री आफ एजुकेशन इन इंडिया, पृ. 113

रिपोर्ट आफ आफिसियल लेंगुएज कमीशन (1956) पृ. 24 गर्वमेंट आफ इंडिया प्रेस, नई दिल्ली (1957)

पोजीशन ऑफ लैंगुएज इन स्कूल करीकुलुम इन इंडिया, एम.जी. चतुर्वेदी, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, पृ. 14

गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा तथा आचार्य कवि गोविंद गिल्ला भाई, मात्रारविन्दम चतुर्वेदी, पृ. 14, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ 1970

अध्यापनः भारतीय दृष्टि, विद्या निवास मिश्र, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, पृ. 79

— वही – पृ. 68 —

— वही – पृ. 68 —

— वही – पृ. 40 —

एजुकेशन इन एन्सिऐंट इंडिया, मिताह चटर्जी, डी.के. प्रिन्ट (प्रा.) लि., नई दिल्ली, पृ. 135

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, डा. ए.एस. आल्तेकर, पृ. 204

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, आर.के. मुखर्जी, पृ. 91–92

आत्मज्ञान, स्वामी प्रकाशन, मौजीराम स्मृतिन्यास, नई दिल्ली, पृ. 17–18

वैदिक शिक्षा पद्धति और आधुनिक शिक्षा पद्धति डा. नागेन्द्र झा, वैंकटेशन प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 29–35

पाणिनीम शिक्षा, पृ. 41–42

एजुकेशन एन्सिऐंट इंडिया, मिताह चटर्जी, पृ. 169

— वही – पृ. 203 —

— वही – पृ. 197 —

— वही – पृ. 165 —

मिलिन्द पंज्हो, पृ. 14

पंचबुद्ध जानक, पृ. 55

एजुकेशन एन्सिऐंट इंडिया, मिताह चटर्जी, पृ. 197

— वही – पृ. 107 —

— वही – पृ. 215 —

अध्यापनः भारतीय दृष्टि, विद्या निवास मिश्र, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, पृ. 79

गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा तथा आचार्य कवि गोविंद गिल्ला भाई, मात्रारविन्दम चतुर्वेदी, पृ. 14, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ 1970

कन्हैया लाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. 100, व्रज साहित्य मंडल, मथुरा

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 1, अप्रैल 2011

आश्रम विद्यालयों के कार्यकलापों के पुनर्गठन की आवश्यकता

बी.के. पंडा*

छतीसगढ़ और ओडिशा के राज्य में आश्रम स्कूलों ने छह दशकों से अधिक समय के लिए कार्य किया है और स्कूल में अनुसूचित जनजाति के बच्चों को लाने और उनको सब सुविधाएं जो उनके माता पिता द्वारा शायद संभव नहीं होती, प्रदान करने में एक बहुत प्रभावी हस्तक्षेप किया है। बच्चों को शिक्षा प्रदान करने और स्कूलों में विशेषत: नियमित उपस्थिति की सुविधा में आश्रम आवासीय विद्यालय के मॉडल को सफलतापूर्वक केंद्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा दोहराया गया और वे बहुत कुशलता से कार्य कर रहे हैं, ग्रामीण प्रतिभाशाली बच्चों के लिए आवासीय विद्यालय के सफल संचालन के लिए सबसे अच्छा उदाहरण जवाहर नवोदय विद्यालय हैं।

आजादी के पहले और उसके बाद आश्रम स्कूलों ने काफी हद तक आदिवासी बच्चों को शिक्षित करने में अपना योगदान दिया है। शैक्षिक रूप से वंचित समुदायों से आने वाले बच्चों के लिए हॉस्टल महत्वपूर्ण सुविधा प्रदान करता है। भारत में कई राज्यों ने आश्रम स्कूलों की अवधारणा को विशेष रूप से आदिवासी बच्चों के शैक्षिक विकास के लिए अपनाया। विशेष रूप से आदिवासी जनसंख्या वाले राज्यों ने आदिवासी बस्तियों में इन स्कूलों को उपलब्ध कराया। आश्रम स्कूल देश में आदिवासी समूहों के बहु-सांस्कृतिक संदर्भों के अनुकूल है। हालांकि आश्रम स्कूलों के कामकाज में कई परिवर्तन किए गए हैं परंतु स्कूल की आवासीय प्रकृति ने इसे एक अनूठी संस्था बना दिया। इस आलेख में यह समझने के लिए कि कैसे इन स्कूलों ने वर्षों से काम किया है और स्कूलों की समस्याओं को जो इन स्कूलों के कामकाज को प्रभावित कर रहा है, को समझने का प्रयास किया गया है।

* एसोसिएट प्रोफेसर, न्यूपा, नई दिल्ली

भारत में अनुसूचित जनजाति की शैक्षिक स्थिति

भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजाति कुल जनसंख्या का 8. 20% थी। देश के विभिन्न भागों में रहने वाली 573 अनुसूचित जनजातियों के लोग 270 से अधिक भाषाओं को बोलते हैं। उनकी जनसंख्या के आकार और विकास के स्तर विभिन्न राज्यों के बीच बदलता है। केंद्रीय, पश्चिमी, और भारत के दक्षिणी राज्यों में आदिवासी आबादी का एक उच्च अनुपात है। वे बीहड़ जंगल और पहाड़ी क्षेत्रों में रहते हैं और उनकी बस्तियों में जनसंख्या घनत्व अधिक है और बिखरी हुई बस्तियाँ उनकी विशेषता है। आदिवासी बस्तियों की लगभग 22% बस्तियों में सौ लोगों से भी कम की आबादी है और 40%से अधिक बस्तियों में 100 से 300 लोग रहते हैं। जबकि शेष में कम से कम 500 लोग हैं: वे सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर हैं तथा 2001 की जनगणना के अनुसार साक्षरता दर (47.10%) (59.17% पुरुष और महिला 34.67%) के साथ वंचित समूह में आते हैं। हालांकि, प्रमुख राज्यों में जनजातियों के बीच साक्षरता दर व्यापक रूप से भिन्न होता है।

हालांकि अनुसूचित जनजाति को अब शिक्षा और अन्य उपलब्ध सुविधाओं के बारे में पता है। प्राथमिक, मध्य, और माध्यमिक स्तर में उनकी भागीदारी समय के साथ बढ़ गयी है, लेकिन उच्च शिक्षा में उनका प्रवेश बहुत कम है और यहां तक कि अगर वे स्नातक की डिग्री के लिए कॉलेजों में प्रवेश पाते हैं तो उनके पेशेवर और परा-स्नातक

तालिका-1
अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता दर (1961-2001)

वर्ष	अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता दरें
1961	8.53
1971	11.30
1981	16.35
1991	29.60
2001	47.10

स्रोत: भारत की जनगणना, 2001

पाठ्यक्रमों में भागीदारी काफी कम रहती है, प्राथमिक स्तर पर भारत में अनुसूचित जनजाति के छात्रों का सकल नामांकन अनुपात 80.50% (86.69% लड़के और लड़कियां 73.94%) है। जनजातियों के बीच स्कूल त्याग दर बहुत है लेकिन यह भी अन्य समुदायों के तुलना में ज्यादा है। पहुंच और भागीदारी में सुधार करने के लिए कई उपाय विभिन्न राज्यों द्वारा अपनाये गये। तालिका-1 में अनुसूचित जनजाति की साक्षरता दर पर एक नजर से पता चलता है कि यह 1961 से बढ़कर 2001 में 47.10% हो गई।

लेकिन साक्षरता दर में वृद्धि शैक्षिक मानक के समग्र विकास नहीं दिखाती। यह भी देखा गया है कि डिग्री और शैक्षिक विकास के स्तर अलग-अलग राज्यों के बीच और अलग राज्यों में विभिन्न आदिवासी समूहों के बीच असमान है। मिजोरम में 89.34% और बिहार में 28.17% की साक्षरता दर उदाहरण के लिए भारत की जनजातियों के बीच साक्षरता दर में असमानता दर्शाती है। यहां तक कि साक्षरता दर में अंतर, शैक्षिक विकास के पांच दशकों (देखें तालिका) में लगभग निरंतर बनी हुई है। अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता दर 2.77% (1961-1971), 5.05% (1971-1981), 13.27% (1981-1991) और 17.48% (1991-2001) में लगातार पांच दशकों में वृद्धि हुई है। हालांकि, सामान्य आबादी की साक्षरता दर और अनुसूचित जनजाति की आबादी के बीच का अंतर 1961 के दौरान 19.77 तथा 1991-2001 में 17.90 के साथ लगभग एक जैसा रहा है।

तालिका-2

सामान्य अनुसूचित जनजाति जनसंख्या के बीच साक्षरता दर में अंतराल (1961-2001)

श्रेणी	**1961**	**1971**	**1981**	**1991**	**2001**
अनुसूचित जनजातियां	8.53	11.30	16.35	29.62	47.10
सामान्य	28.30	34.45	43.57	52.21	65.00
अंतर	19.77	23.15	27.22	22.59	17.90

स्रोत:भारत की जनगणना, 2001

बहुमत (23) राज्यों में अनुसूचित जनजातियां अभी भी 65%के राष्ट्रीय औसत से नीचे की साक्षरता दर पर है और केवल हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम,

लक्षद्वीप, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में, अनुसूचित जनजाति की आबादी का साक्षरता दर या तो बराबर या राष्ट्रीय साक्षरता दर से ऊपर है। बिहार राज्य में सबसे कम साक्षरता दर 28.17% है। अनुसूचित जनजाति (महिला 39.76% और पुरुष 15.54%) है। इसके पश्चात उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर और आडिशा, क्रमशः आते हैं।

अनुसूचित जनजातियों के बीच प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा

तालिका-3 में पिछले चार वर्षों के लिए प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तर में अनुसूचित जनजाति के छात्रों के सकल नामांकन अनुपात से पता चलता है कि यद्यपि जी.ई.आर. में उतार-चढ़ाव आया है, परंतु इसमें सुधार की प्रवृति है।

तालिका-3

अनुसूचित जनजाति के बच्चों का सकल नामांकन अनुपात

वर्ष	प्राथमिक		उच्च प्राथमिक	
	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां
2003-04	94.6	87.7	84.00	66.62
2004-05	128.06	116.49	73.8	59.49
2005-06	131.40	121.12	77.76	65.12
2006-07	134.42	123.97	80.22	68.22

स्रोतःएस.ई.एस/मानव संसाधन विकास मंत्रालय 2004-05, 2005-06 और 2006-07

अनुसूचित जनजाति के छात्रों की जी.ई.आर स्कूली शिक्षा के प्राथमिक स्तर में बहुत कम है। अभी भी वहां अधिकांश आदिवासी बच्चे स्कूली शिक्षा प्रणाली से बाहर हैं और वैकल्पिक स्कूलों और आदिवासी क्षेत्रों में स्कूलों के अन्य रूपों के प्रावधान के बावजूद स्कूलों में नामांकित नहीं हो पा रहे हैं।

अनुसूचित जनजाति के छात्रों की स्कूल त्याग दर में पिछले कुछ वर्षों में कमी आई है। प्राथमिक स्तर पर (I-V)लड़कियों के लिए और लड़कों के लिए 48.7% से 35. 82% तथा 49.1% 30.57% क्रमशः तक नीचे गिर गया है, प्रारंभिक स्तर पर यह 71. 4% से 62.22% लड़कियों के लिए कम हो गया और लड़कों के लिये 69.0% से 62.

78% पर आ गया। माध्यमिक स्तर पर लड़कियों के लिए यह 81.2% से 79.08% और 77.9% से 77.32% तक लड़कों के लिये नीचे आ गया है। यहां स्कूल छोड़ने की दर में मामूली कमी देखने को मिलती है, तालिका-4 से अनुसूचित जनजाति के लड़कों और लड़कियों के बीच प्रतिधारण दरों में सुधार का संकेत का पता चलता है।

तालिका-4

वर्ष	प्राथमिक		उच्च प्राथमिक		माध्यमिक	
	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां
2003-04	49.1	48.7	69.0	71.4	77.9	81.2
2004-05	42.55	42.04	64.97	67.09	77.75	80.66
2005-06	40.31	39.26	62.76	63.20	77.96	79.82
2006-07	30.57	35.82	62.78	62.22	77.32	79.08

स्रोत:एस.ई.एस/मानव संसाधन विकास मंत्रालय: 2004-05,2005-06 और 2006-07

हालांकि यह देखा जा सकता है कि अनुसूचित जनजाति के छात्रों की स्कूल छोड़ने की दर अन्य श्रेणियों के साथ और अनुसूचित जाति के छात्रों की तुलना में उच्च है। स्कूली शिक्षा प्रणाली अपने को बनाए रखने और शिक्षा के उच्च स्तर (गोविंदा आर., 2001) में प्रवेश के लिए छात्रों के बहुमत की आपूर्ति की स्थिति में नहीं है।

छतीसगढ़ और ओडिशा राज्यों में अनुसूचित जनजाति-जनसंख्या एवं साक्षरता

छतीसगढ़ में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या राज्य की कुल जनसंख्या का 31.8% है और यह अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या के अनुपात के मामले में सभी राज्यों में आठवां स्थान रखता है। राज्य में 42 अनुसूचित जनजाति हैं। आदिवासी बहुल जिलों- दंतेवाड़ा (78.5%), (66.3%) बस्तर और जशपुर(63.2% हैं। 42 जनजातियों के बीच गोंड अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 55.3% है जो राज्य में सबसे अधिक आबादी वाली जनजाति है। (तालिका-5)

अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता दर 52.1% है जो अनुसूचित जनजातियों की तुलना में राष्ट्रीय स्तर की 47.1% (2001) में अधिक है। पुरुष और महिला साक्षरता दर

तालिका-5
अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता दर-छत्तीसगढ़

साक्षरता दर	सभी अनुसूचित जनजाति (राज्य)	हालना	ओरांव	कवार	गोंड	भत्तरा
व्यक्ति	52.1	74.1	62.2	61	49.2	38
महिला	39.3	63.3	52	45.6	36.6	23.6

स्रोत: भारत की जनगणना, 2001

65% और 39.3% है जो राष्ट्रीय स्तर 59.2% और 34.8% की तुलना में अधिक है। हालबा, ओरांव, और कवार कि राज्य में सभी जनजातियों में उच्च साक्षरता दर है और राज्य में भत्तरा सबसे कम साक्षरता दर वाली जनजाति है।

तालिका-6
छतीसगढ़ में अनुसूचित जनजाति के बच्चे (5-14 वर्ष)

आयु समूह	सभी अनुसूचित जनजाति	गोंड	कबार	ओरांव	हालबा	भत्तरा
5-14 वर्ष	58.7	55.7	66.5	71.2	77.3	52.6

स्रोत: भारत की जनगणना, 2001

5-14 वर्ष की आयु समूह में (तालिका-6) 17 लाख आदिवासी बच्चों में 58.7% स्कूल में जाते हैं जो 10 लाख है। जबकि वहां अभी तक 41.3% (7 लाख) बच्चे स्कूल नहीं जाते हैं। गोंड बच्चों को जो 5-14 वर्ष आयु समूह में कवार के बाद स्कूल नहीं जाते हैं, कि संख्या सबसे ज्यादा है। प्राथमिक और मध्यम स्तर के लिए साक्षरों का अनुपात क्रमश: 26.3% और 12.3% रहे हैं। मैट्रिक/माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक शिक्षित व्यक्तियों का प्रतिशत 8.8% है। जबकि अनुसूचित जनजातियों के 1.9% लोगों को स्नातक की उपाधि प्राप्त है तथा अनुसूचित जनजाति में गैर-तकनीकी और तकनीकी डिप्लोमा प्राप्त व्यक्तियों की संख्या भी बहुत कम है।

ओडिशा में, अनुसूचित जनजाति जनसंख्या राज्य की कुल जनसंख्या का 22.1% है और देश की कुल आदिवासी जनसंख्या का 9.7% है और भारत में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या के मामले में ग्यारहवां स्थान रखता है। अधिकतम आदिवासी जनसंख्या मलकानगिरि 57.4%, मयूरभंज 56.6%, रायगडा 55.8% और नबरंगपुर 55% हैं। राज्य में 62% अनुसूचित जनजाति, खोंड सबसे अधिक जनसंख्या वाले अनुसूचित जनजाति के 17.1% के साथ पहले स्थान तथा गोंड जनसंख्या 9.6 % के साथ दूसरे स्थान पर है। इन दो प्रमुख जनजातीय समूहों के साथ सताल, कोलहा, मुंडा, साओरा, शबर और भरोड़ा राज्य के कुल अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या का 64.2% है। छतीसगढ़ के आदिवासी समूहों में से कुछ के विपरीत ओडिशा की जनजातियां काफी कम साक्षरता दर 2001 में 37.4% के साथ राष्ट्रीय स्तर की तुलना में पीछे हैं। पुरुष साक्षरता दर 34.4% से 51.5% बढ़ गयी है जबकि महिला साक्षरता दर वर्ष 1991–2001 के दौरान 10.2% से 23.4% बढ़ गयी है।

आश्रम स्कूल

आश्रम स्कूल की स्थापना की अवधारणा परंपरागत गुरुकुल और बुनियादी शिक्षा के गांधीवादी दर्शन से निकली थी, जिसमें शिक्षक और शिष्य साथ में रहते हैं और संपर्क रखते हैं। इस अवधारणा का आधार आश्रम सहकर्मी समूहों, शिक्षकों और सीखने के माहौल, बेहतर सुविधाओं के प्रतिस्थापन हैं जो अन्यथा अध्ययन करने के लिए घर पर बच्चों के लिए उपलब्ध नहीं होते। आवासीय प्रकृति, निकटता, पर्याप्त अकादमिक सहायता के साथ पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों की शुरूआत हुई, इन स्कूलों में व्यावसायिक शिक्षा के लिए प्रावधान किया गया था, परंतु, व्यावसायिक कार्यक्रम शिक्षित बच्चों की जरूरतों के लिए अपर्याप्त पाए गए और इसलिए कई आश्रम स्कूलों (पंडा, बी.के., 1996) में इन्हें बंद कर दिया गया है।

1922 में एक प्रख्यात सामाजिक कार्यकत्ता ठक्कर बापा गांधीवादी आंदोलन से प्रभावित होकर, आदिवासी बच्चों के लाभ के लिए विशेष रूप से गुजरात राज्य के पंचमहल पहाड़ियों में आश्रम स्कूलों का प्रयोग शुरू किया। यह प्रयोग आदिवासी बच्चों को शिक्षा देने में सफल साबित हुआ। कई भारतीय राज्य आगे आए और संबंधित राज्यों में ऐसे स्कूल शुरू हुए। डाबरा आयोग ने 1961 में आदिवासी विकास कार्यक्रमों की समीक्षा की और पाया कि राज्यों के कई आश्रम स्कूल सफलतापूर्वक कार्य कर रहे थे। इन आश्रम स्कूलों के आयोजन की सफलता की कहानी के पहले पांच साल और बाद

की योजनाओं में ऐसे स्कूलों के लिए योजना प्रावधान में धन आवंटित हुआ। शिक्षा आयोग (1964-66) ने भी आश्रम स्कूलों को खोलने की सिफारिश की। परिणाम स्वरूप इसके अधिक से अधिक आश्रम स्कूल आंध्रप्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, और राजस्थान राज्यों में खोले गए। हालांकि, आदिवासी कल्याण विभाग द्वारा प्रबंधित स्कूलों के अलावा कुछ राज्यों में स्वैच्छिक संगठनों के भी आश्रम स्कूल कामयाब रहे।

आश्रम स्कूलों के उद्देश्य और कार्यकलाप

विभिन्न समितियों और आयोगों द्वारा परिकल्पित आश्रम स्कूलों के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. बच्चों को ऐसे वातावरण जो आम तौर पर उनके व्यक्तित्व और दृष्टिकोण के विकास के लिए अनुकूल नहीं हैं, से दूर रखना;
2. सामान्य औपचारिक शिक्षा प्रदान करने के लिए;
3. सामान्य शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक रूप से उपयोगी व्यावसायिक/शिल्प शिक्षा;
4. लोक नृत्यों जैसी आदिवासी परंपराओं को प्रोत्साहित करने के लिए जिससे कि विद्यालय केवल सीखने का केंद्र न बनकर, सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र भी बने;
5. शिक्षक और छात्र के बीच संपर्क और व्यक्तिगत आवश्यकता को ध्यान में रखकर पढ़ाया जाता है एवं घनिष्ठ संपर्क स्थापित करना, और
6. स्कूल त्याग-दर को कम करने और स्कूलों की प्रतिधारण क्षमता में सुधार।

आश्रम स्कूल सामान्य रूप से प्रकृति में आवासीय रहे हैं और बच्चों को बोर्डिंग और लॉजिंग सुविधाएं साथ प्रदान की जाती हैं। इसके अलावा, वे उच्च संरचित और व्यवस्थित ढांचे के भीतर कार्य करते हैं।

आश्रम स्कूलों के लिए व्यापक नीतिगत दिशानिर्देश आदिवासी कल्याण कार्यक्रमों पर विभिन्न समितियों और अध्ययन समूहों द्वारा परिकल्पित हैं: (1) आश्रम स्कूलों को अंतर-ग्रामीण स्कूल होना चाहिए, (2) आश्रम स्कूल को ऐसे क्षेत्र जहां सामान्य स्कूलों को खोला नहीं जा सकता वहाँ खोला जाना चाहिए है, और (3) सबसे पिछड़े आदिवासी समूहों को शामिल किया जाना चाहिए।

हालांकि, अवधारणा और आश्रम स्कूलों के उद्देश्य मूल रूप से सभी राज्यों में एक जैसे हैं परंतु उनकी योजना और प्रबंधन विभिन्न राज्यों में भिन्न होते हैं। स्कूलों की स्थापना शिक्षा के मानदंडों के स्तर तथा गतिविधियां दूसरे राज्यों से अलग-अलग होती हैं।

तालिका-7

अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता दर-ओडिशा

साक्षरता दर	सभी जनजातियां (राज्य)	गोंड	साओंरा	संथाल	मुंडा	शबर	खोंड	कोलहा	भोटाडा
व्यक्ति	37.4	47.0	41.1	40.5	39.7	35.4	31.9	27.1	24.3
महिला	23.4	30.8	25.7	24.7	27.6	19.9	18.0	14.3	11.1

स्रोत: भारत की जनगणना, 2001

प्राथमिक और मध्यम स्तर के लिए साक्षरों के अनुपात 28.7% और 13.7% है। आदिवासी बच्चे जो मैट्रिक/माध्यमिक/उच्च माध्यमिक शिक्षित हैं केवल 11% है। स्नातक और उससे ऊपर 1.5% है और गैर तकनीकी और तकनीकी डिप्लोमा धारक उच्चतम साक्षरता दर के साथ 47.0% के साथ गोंड जनजाति है। उसके बाद साओरा 41% है जबकि सबसे कम साक्षरता दर भोटाडा जनजाति की है। (तालिका-7)

तालिका-8

ओडिशा में अनुसूचित जनजाति के बच्चे (5-14 वर्ष) (स्कूल उम्र)

उम्र समूह	सब जनजातियां	खोंड आदि	गोंड आदि	संथाल आदि	कोटहा आदि	मुंडा आदि	साओरा	शबर	भोटाडा
5-14 वर्ष	45.8	41.7	56.1	46.5	31.6	42.2	51.8	44.8	36.8

स्रोत: भारत की जनगणना, 2001

21.4 लाख बच्चों की 5-14 वर्ष आयु वर्ग के समूह में स्कूल में नामांकन 45.8% है। यह चिंताजनक है। गोंड और साओरा जनजाति के 11.6% लाख बच्चे स्कूल नहीं जाते, गोंड और साओरा जनजाति के बच्चे इसी आयु वर्ग में स्कूल जाने वाले कुल बच्चों में से आधे से अधिक हैं। (तालिका-8)

राज्यों के बीच कार्य पद्धति, संरचना और आश्रम स्कूलों में शिक्षा के स्तर व्यापक रूप से भिन्न हैं, महाराष्ट्र और गुजरात जैसे राज्यों में, ज्यादातर निजी सहायता प्राप्त स्कूल स्वैच्छिक संगठनों द्वारा चलाए जा रहे हैं। आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, मध्य प्रदेश और राजस्थान के राज्यों में आश्रम स्कूल राज्य सरकारों के आदिवासी कल्याण विभाग के अंतर्गत विशेष रूप से कार्य कर रहे हैं। मध्य प्रदेश के मामले में आश्रम स्कूल आम तौर पर माध्यमिक स्तर के लिए कार्य कर रहे हैं और माध्यमिक स्तर पर इनको 'मॉडल स्कूल' कहा जाता है। राजस्थान में सभी आश्रम स्कूल सह-शिक्षा दे रहे हैं जबकि राजस्थान, मध्य प्रदेश और ओडीशा में आश्रम स्कूलों में लड़कियों और लड़कों के लिए अलग व्यवस्था है। ओडीशा में आश्रम स्कूलों में शिक्षा प्राथमिक, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर प्रदान की जाती है। व्यावसायिक शिक्षा कुछ माध्यमिक विद्यालयों में दी जाती है।

छत्तीसगढ़ और ओडिशा राज्यों में आश्रम स्कूल

आश्रम स्कूल पहली बार 1949 में बुनियादी स्कूलों के रूप में प्रारंभ किये गये। आरंभ में इन्हें गुरुकुल आश्रम के रूप में शिक्षक तथा शिक्षक एक ही परिसर में साथ रहने के रूप में दिए गये। इसके बाद विभिन्न राज्य सरकारों ने आवासीय सुविधाओं के साथ आदिवासी क्षेत्रें में आदिवासी स्कूल खोलने का फैसला लिया। इसका उद्देश्य आदिवासी बच्चों को शिक्षा देना था। प्रारंभिक स्थिति में इन्हें आवासीय माध्यमिक स्कूलों के रूप में प्रारंभ किया गया तथा आदिवासी बहुल क्षेत्रों में खोला गया। इन्हें माध्यमिक विद्यालय कहा गया तथा इसमें कक्षा IV से VI तक चार कक्षाएं होती थीं। प्रथम योजना में केवल 28 स्कूल खोले गये, हालांकि, प्रत्येक योजना के साथ इन स्कूलों की संख्या में वृद्धि होती गई। इन स्कूलों को खोलने का आधार आदिवासी जनसंख्या का घनत्व तथा जनगणना के अनुसार आदिवासी लोगों में साक्षरता की दर थी। इन स्कूलों में प्रवेश समीपवर्त्ती या पड़ोसी निम्न प्राथमिक विद्यालय जो आदिवासी कल्याण या शिक्षा विभाग द्वारा प्रबंधित विद्यालयों के छात्र आते हैं। हालांकि, कल्याण विभाग के छात्रों को वरीयता दी जाती है। आमतौर पर बच्चों की प्रवेश आयु 6-14 वर्ष है। इन सभी स्कूलों में, शिक्षा, वस्त्र, आवासीय तथा चिकित्सा प्रभार सरकार द्वारा उठाया जाता है, इसके अतिरिक्त उन्हें पठन सामग्री तथा लेखन सामग्री, बिस्तर, बर्तन, इत्यादि उपलब्ध कराये जाते हैं (आनंदा, जी, 1995, हरदिया आर.सी.1992, झा पृ. 1983, प्रताप सं., 1971, सुजाता के. 1983)

आश्रम स्कूल स्थानीय छात्रों को भी प्रवेश देते हैं परंतु आवासीय सुविधायें उन्हें प्राप्त नहीं होती। यहां तक कि अनुसूचित जाति के बच्चों को भी प्रवेश दिया जाता है और उनहें सभी सुविधायें दी जाती हैं। इन क्षेत्रों में व्याप्त आश्रम स्कूलों में अनुसूचित जाति के दस प्रतिशत आदिवासी बहुल क्षेत्रों से तथा अनुसूचित बहुल क्षेत्रों से दस प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के छात्रों को प्रवेश दिया जाता है। कल्याण विभाग, शिक्षा विभाग के स्कूलों का भी वित्त पोषण करता है तथा आश्रम स्कूलों की वर्तमान और नई शाखाओं का प्रतिलिपिकरण नहीं होने देता। दूसरी ओर यह 40 विद्यार्थियों के भोजन के लिए वित्त पोषण करता है। छतीसगढ़ राज्य में आश्रम स्कूल में प्रवेश पर प्रत्येक लड़की और लड़के को क्रमश: 360 तथा 350 रूपये एक वर्ष में दस महीने के लिए मिलते हैं। इस प्रकार इन दोनों विभागों के बीच स्कूलों के खोलने के लिए व्यावहारिक कार्य हेतु संयुक्त प्रयास किये जाते हैं तथा साथ ही आदिवासी क्षेत्रों के विकास हेतु कार्य किये जाते हैं।

जो स्कूल कल्याण विभाग द्वारा संचालित किये जाते हैं, वह राज्यों के शिक्षा विभाग के पाठ्यक्रम को लागू करते हैं। ब्लॉक स्तर पर आदिवासी कल्याण अधिकारी के अतिरिक्त शिक्षा विभाग के निरीक्षक और शिक्षा अधिकारी इन स्कूलों का अकादिमक निरीक्षण करते हैं। वर्तमान में यह स्कूल सर्व शिक्षा अभियान के दायरे में आते हैं। जहां अकादमिक समन्वयक नियमित रूप से भ्रमण करते हैं तथा इन विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों को अकादमिक आगत उपलब्ध कराते हैं। एस.एस.ए के अंतर्गत इन आश्रम स्कूलों को दूसरे स्कूलों की तरह वित्त पोषित किया जाता है। यहां उल्लेखनीय है कि कई राज्यों में इन आश्रम स्कूलों के प्रबंधन हेतु वित्तीय सहायता केंद्र सरकार द्वारा आदिवासी कल्याण विभाग, सामाजिक कल्याण तथा मा.सं.वि. मंत्रालय से प्रदान की जाती है।

विभिन्न राज्यों में आश्रम स्कूलों के वितरण को समझने हेतु आदिवासी कल्याण विभाग द्वारा प्रबंधित स्कूलों (बालक तथा बालिकाएं) का वितरण वर्ष 2007 के लिए दर्शाया गया है। तालिका–10 में राज्य में कार्यरत आवासीय आश्रम स्कूलों तथा विभाग द्वारा संचालित अन्य स्कूलों का ब्यौरा दिया गया है, जो कि विशिष्ट तौर पर अनुसूचित जाति के बच्चों को लाभ देने के लिए प्रारंभ किये गये हैं। इनमें 112 आवासीय आश्रम स्कूल, 457 गैर आवासीय सेवा आश्रम, 143 आवासीय सेवाश्रम तथा ओडिशा सरकार के आदिवासी कल्याण विभाग द्वारा संचालित 155 लड़कों तथा 91 लड़कियों के साथ 246 उच्च माध्यमिक विद्यालय हैं (तालिका–9)। जबकि छत्तीसगढ़ में 887 आश्रम

स्कूल हैं जिनमें से लड़कों के लिए 389 तथा लड़कियों के 247 स्कूल हैं तथा 241 सह आश्रम स्कूल हैं। इन 887 स्कूलों में से 701 प्राथमिक विद्यालय हैं तथा 186 मिडिल स्कूल हैं। लड़कियों के लिए कुल सीटें 12,805 तथा लड़कों के लिए 18,075 तथा सह आश्रम स्कूल में 20,905 हैं। इस प्रकार राज्य में 887 आश्रम स्कूलों में 51,785 सीटें उपलब्ध हैं। (तालिका–10)

तालिका–9

आदिवासी कल्याण विभाग, ओडिशा, द्वारा संचालित स्कूल

आश्रम स्कूल	गैर–आवासीय आश्रम स्कूल	आवासीय स्कूल	उच्च विद्यालय	
			बालक	बालिकाएं
112	457	143	155	91

तालिका–10

आदिवासी कल्याण विभाग, छत्तीसगढ़, द्वारा संचालित आश्रम स्कूल

स्कूलों का प्रकार	आश्रम स्कूल				स्वीकृत सरकार			
	लड़के	लड़कियां	सह–स्कूल	योग	लड़के	लड़कियां	सह–स्कूल	योग
प्राथमिक विद्यालय	330	180	191	701	14730	8440	15155	38325
मिडिल स्कूल	59	67	60	186	3345	4365	5750	13460
	389	247	251	887	12805	12805	20905	57783

प्रत्येक स्कूल में आवासीयों की संख्या छात्रावास में रह रहे छात्रों के अनुसार भिन्न–भिन्न हैं जो कि 40–250 के बीच है और स्कूल के प्रकार पर निर्भर करती है। आंकड़ों से पता चलता है कि कन्याश्रम तथा उच्च स्कूलों का स्वरूप आवासीय है। छत्तीसगढ़ आश्रम स्कूलों में 30,50,80 तथा 100 तक सीटें हैं तथा एक से पांच तथा एक से आठ तक की कक्षाओं में पढ़ाई होती है। ओडिशा के संदर्भ में अनुसूचित जाति तथा जनजातियों की प्रत्येक श्रेणी के छात्रावास में संख्या भिन्न है।

आश्रम स्कूलों का कार्यकलाप

जिला कल्याण अधिकारी को स्कूलों की शैक्षणिक गतिविधियों का पर्यवेक्षण करने के लिए प्राधिकृत किया गया है। हाई सकूल में प्रधानाध्यापक और प्रशासन को छात्रवृत्ति, आकस्मिक भुगतान तथा स्टाफ के भत्तों के आहरण और संवितरण का अधिकार दिया गया है। आश्रम स्कूलों की प्राथमिक शाखाओं में जिला कल्याण अधिकारी वेतन, आकस्मिक व्यय तथा अन्य भुगतानों के लिए आहरण और संवितरण अधिकारी के रूप में कार्य करता है।

अधिकांशत: ये स्कूल अवासीय हैं। इन स्कूलों की विभिन्न गतिविधियों, हास्टल मेस और हास्टल सुविधाओं की देखरेख के लिए समितियां गठित हैं। समितियों से स्कूल के कल्याण और विकास की देखरेख और नियमित बैठकें आयोजित करने की अपेक्षा की जाती है। इन बैठकों में स्कूलों का पुन: उच्च स्तरीकरण और अतिरिक्त भवन निर्माण तथा विकास कार्य आदि मसलों पर चर्चा की जाती है।

आठवें दशक के उत्तरार्ध में आदिवासी कल्याण विभाग, ओडिशा ने सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर बेहतर कार्य करने वाले आश्रम स्कूलों को नकद पुरस्कार से पुरस्कृत करने का कार्यक्रम आरंभ किया था ताकि इनके बीच बेहतर कार्य करने की प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन दिया जा सके। यह नकद पुरस्कार निम्नांकित पक्षों के व्यापक सांस्थानिक मूल्यांकन के आधार पर किया जाता है: (क) उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में शैक्षणिक कार्यनिष्पादन (परीक्षा परिणाम/ प्रदर्शन); (ख) व्यावसायिक विषयों जैसे– बढ़ईगिरी, सिलाई और बुनाई आदि; में संस्थान की गतिविधियां; और (ग) स्कूल की कृषि कार्य संबंधी गतिविधियां। उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में बेहतर परीक्षा परिणाम देने वाले स्कूलों को 1000 रुपये का नकद पुरस्कार के साथ मेरिट प्रमाण पत्र दिया जाता है। इसी प्रकार व्यावसायिक विषयों में अच्छा प्रदर्शन करने वाले स्कूलों को रु. 500/– का नकद पुरस्कार दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष शैक्षणिक क्षेत्र में बेहतर करने वाले 20 स्कूलों तथा व्यावसायिक विषयों में बेहतर करने वाले 10 स्कूलों को पुरस्कृत किया जाता है।

सत्तर के दशक में अध्यापकों को भी जनजातीय भाषा दक्षता परीक्षा के आधार पर पुरस्कृत किया जाता था। इसका मुख्य उद्देश्य गैर जनजातीय अध्यापकों को क्षेत्र विशेष जनजातीय भाषा सीखने के लिए प्रोत्साहित करना था ताकि वे जनजातीय क्षेत्रों में बेहतर ढंग से अपनी सेवाएं प्रदान कर सकें।

आश्रम स्कूलों में अध्यापकों और विद्यार्थियों के एक साथ एक परिसर में रहने की व्यवस्था से एक नवाचारी परिवेश का निर्माण होता था जिससे उनके बीच शिक्षा का अच्छे संबंध स्थापित हों। स्कूल की समय सारणी विभिन्न गतिविधियों को ध्यान में रखकर बनाई जाती है जो एक दूसरे स्कूल से भिन्न होती है। आश्रम स्कूल का मुख्य उद्देश्य एक प्रेरक परिवेश में बच्चों को बेहतर शिक्षा प्रदान करना है।

छत्तीसगढ़ में स्कूलों के कार्यकलापों तथा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए जनजातीय कल्याण विभाग ने माडल स्कूल अवार्ड स्थापित किया है। यह अवार्ड हाई स्कूल तथा उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के कार्य निष्पादन के व्यापक मूल्यांकन के आधार पर चयनित स्कूलों को प्रदान किया जाता है। इस प्रतियोगिता के अंतर्गत प्रथम पुरस्कार के लिए 3 लाख रुपये, द्वितीय पुरस्कार के लिए 2 लाख रुपये तथा तीसरे पुरस्कार के लिए 1 लाख रुपये प्रदान किए जाते हैं। स्कूल इस पुरस्कार राशि का उपयोग पुस्तकालय, प्रयोगशालाओं तथा अन्य भौतिक सुविधाओं के विकास में करते हैं।

कठिन विषयों में विशेष कक्षा अध्यापन

छत्तीसगढ़ में कठिन विषयों, जैसे- गणित, विज्ञान, भूगोल, अंग्रेजी, कृषि के लिए आवासी स्कूलों तथा हास्टलों में रह रहे अ.जा.और अ.ज.जा. के विद्यार्थियों के लिए स्कूल समय के बाद विशेष कक्षाएं आयोजित की जाती हैं। इसके लिए विभिन्न स्कूलों में कार्यरत उत्कृष्ट अध्यापकों की सूची बनाई गई है और उन्हें प्रति सप्ताह निर्धारित घंटों के लिए विशेष शिक्षण कार्य हेतु आमंत्रित किया जाता है। सरकार ने विशेष शिक्षण हेतु 146 ब्लाक चिन्हित किए हैं। इन विशेष कोचिंग केंद्रों पर जरूरतमंद बच्चे आते हैं और यहां उन्हें कठिन विषयों को पढ़ाया जाता है और बेहतर परीक्षा परिणाम के लिए तैयार किया जाता है। यह कदम आवासीय स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार की दिशा में उठाया गया एक सार्थक कदम है। विशेष शिक्षण कार्य के लिए अध्यापकों को 10 घंटे के शिक्षण कार्य हेतु रु. 700 का मानदेय दिया जाता है। विषयों को अच्छी तरह से पढ़ाने वाले शिक्षकों या फिर उच्च योग्यता वाले अध्यापकों को विशेष शिक्षण कार्य के लिए आमंत्रित किया जाता है ताकि अध्यापक और विद्यार्थी, दोनों ही स्कूल समय के बाद विशेष शिक्षण केंद्र पर सुगमता से आ जा सकें जो कि पांच किलोमीटर के भीतर ही होता है।

आश्रम स्कूलों का संगठन

किसी भी स्कूल का सुचारू प्रबंधन उसके भौतिक संसाधन, अध्यापकगण और विद्यार्थीगण के परस्पर सम्मुचय और समुचित उपयोगिता पर निर्भर करता है। स्कूल के प्रबंधन के तरीके से स्कूल का स्वरूप तय होता है। अत: स्कूल का संगठन उसके सदस्यों, अध्यापकों, विद्यार्थियों,स्कूल स्टाफ तथा अन्य कार्मिक के परस्पर अनुक्रिया पर निर्भर है (डेनिसन और अन्य, 1987)। स्कूल के प्रबंधन में समुचित संसाधनों का प्रबंधन, अकादमिक प्रबंधन और शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के कुशल समायोजन और सतत निगरानी का बहुत महत्व है। इसके अभाव में स्कूल का कार्यकलाप दिशाहीन हो जाता है और स्कूल अपने लक्ष्यों से भटक जाता है। (रीड, 1978)

आरंभ में जनजातीय क्षेत्र के स्कूल न तो ठीक प्रकार से कार्य कर रहे थे और न ही जनजातीय विद्यार्थियों की सामुदायिक जरूरतों, संस्कृति, भाषा, रहन-सहन, रीति-रिवाजों पर विशेष ध्यान दिया जाता था जो कि स्कूल की मूलभूत अवधारणा के बिल्कुल प्रतिकूल आचरण था (देसाई आदि, 1981, कुंडू, एम. 1994, पंडा, बी.के. 1996, पंडा, एस.टी. 1983, पटेल, एस. 1991, सुजाता, के. 1993)। बाद में स्कूल की मूल अवधारणा के अनुरूप जनजातीय क्षेत्रों के स्कूलों के समग्र विकास की दिशा में प्रभावकारी कदम उठाए गए। इसकी पड़ताल के लिए छत्तीसगढ़ के 10 आश्रम स्कूलों से सूचनाएं एकत्र की गई। इन सूचनाओं के आधार पर आवासीय स्कूलों के प्रबंधन एवं कार्यकलापों के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

आश्रम स्कूलों में बच्चों का नामांकन

आश्रम स्कूलों में आस-पास के छोटे-छोटे स्कूलों के बच्चे दाखिला लेते हैं। ये छोटे स्कूल शिक्षा विभाग और जनजातीय कल्याण विभाग के हैं। इसमें जनजातीय व कल्याण विभाग के स्कूलों के बच्चों को वरीयता दी जाती है। प्रत्येक आश्रम स्कूल के विस्तार क्षेत्र में पांच गांवों से लेकर 50 गांव आते हैं। आमतौर पर जनजातीय गांव दूर-दूर बिखरे होते हैं और आबादी भी बहुत कम होती है। दूर के गांवों के बच्चों को हास्टल सुविधाएं प्रदान की जाती हैं जबकि स्थानीय बच्चों को नि:शुल्क और अन्य सुविधा दी जाती हैं और उन्हें डे-स्कालर माना जाता है। प्रत्येक आश्रम स्कूल के अंतर्गत 3 से लेकर 50 छोटे स्कूल आते हैं। यह संख्या आश्रम स्कूल के अंतर्गत आने वाले गांवों की संख्या पर आधारित है। आश्रम सकूल के दायरे में एक से पांच मिडिल स्कूल आते हैं। आश्रम स्कूल के विस्तार क्षेत्र में एक से लेकर 10 हाई स्कूल होते हैं मगर हाई स्कूल के बच्चे

आश्रम स्कूल में नहीं आते हैं।

जनजातीय क्षेत्र में गांवों की आबादी और दूर-दूर बिखरी बस्तियों को देखते हुए प्रत्येक गांव में स्कूल खोलना संभव नहीं है। अत: जिस बस्ती में कम से कम 20 बच्चे होते हैं वहां शिक्षा गांरटी योजना केंद्र भी स्थापित किया जाता है। अत: जनजातीय क्षेत्र में समुचित और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की व्यवस्था का सबसे उपयोगी और प्रभावी विकल्प आश्रम स्कूल हैं।

स्कूल में अपेक्षित सुविधाएं

आश्रम स्कूलों की स्थापना बेहतर और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से की गई थी। अत: बेहतर सुविधाओं और पहुंच की दृष्टि से आश्रम स्कूल में स्कूल भवन, छात्रावास और अन्य संबंधित सुविधाओं की अपेक्षा है।

छत्तीसगढ़ ने जनजातीय क्षेत्रों में काफी हद तक अच्छे स्कूल भवन प्रदान करने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। समुचित सुसज्जित कक्ष, पक्का स्कूल भवन, छात्रावास, भोजनालय, किचन और शौचालय तथा स्नानगृह हैं। कुछ स्कूलों की चार दीवारी अभी बनाई जानी हैं। केवल एक समस्या है पेयजल के संग्रह और निरंतर पानी की आपूर्ति के लिए पानी की टंकी की कमी की। इसके कारण शौचालय और स्नानगृह का उपयोग नहीं हो पाता है। दूसरी समस्या है बिजली की आपूर्ति। यह समस्या मध्य प्रदेश, ओडिशा और छत्तीसगढ़ के सभी जनजातीय क्षेत्रों में है। इससे आश्रम स्कूलों के कार्यकलापों पर काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। आश्रम स्कूलों के बच्चों को नहाने-धोने और अन्य नित्य कार्यक्रम हेतु आस-पास के नदी-नालों का उपयोग करना पड़ता है। (पंडा, 2008) इससे संबंधी सूचना तालिका-11 में प्रस्तुत है।

तालिका-11
स्कूली सुविधाएं

भवन	कक्षाएं	स्टाफ	कार्यालय	छात्रावास	शौचालय	स्नानगृह
पक्का 75%	3-8	55%	25%	20%	25%	20%
अध-पक्का 25%		45%	75%	80%	75%	80%

अन्य स्कूली सुविधाएं

आश्रम स्कूलों में उपर्युक्त भौतिक सुविधाओं के अलावा निम्नांकित सुविधाएं भी समुचित रूप से उपलब्ध नहीं है–स्टाफ क्वार्टर्स, चार दीवारी, स्कूल गार्डन, किचन गार्डन, बिजली और पानी। तालिका 12 से इसका विस्तृत विवरण दृष्टिगत होता है:

आश्रम स्कूल की सफलता के लिए उपर्युक्त सुविधाओं का होना एक अनिवार्य शर्त है। इनके अभाव में आश्रम स्कूल न तो डे–स्कूल और न ही आश्रम स्कूल की जरूरतें पूरी करते हैं। इस कारण इनकी स्कूल गुणवत्ता पर भारी असर पड़ता है और ये अपने लक्ष्य की प्राप्ति भी नहीं कर पाते हैं।

तालिका 12
अन्य विद्यालयी सुविधायें

स्टाफ क्वार्टस	उपलब्ध क्वार्टर्स	चार–दीवारी	स्कूल गार्डेन	किचन गार्डेन	बिजली	पानी
अनुपलब्ध 70%	30% 1–12	50%	80%	60%	45%	80%
उपलब्ध 30%	70% 1-2	50%	20%	40%	55%	20%

जनजातीय विद्यार्थियों को प्रोत्साहन और सुविधाएं

सभी राज्यों में जनजातीय कल्याण विभाग, बच्चों को (विशिष्ट समय पर और समुचित सुविधाओं की आपूर्ति सुनिश्चित करता है। आवासीय स्कूल होने के कारण हास्टल में भोजन की सुविधा के अलावा टूथपेस्ट, तेल, साबुन, वर्दी और बस्तों की आपूर्ति की जाती है। भोजनालय तथा किचन के लिए बर्तन भी स्कूल द्वारा प्रदान किया जाता है। इसके अलावा पाठ्यपुस्तकें, कापियां, पेन–पेंसिल तथा अन्य स्टेशनरी की वस्तुएं भी विद्यार्थियों को प्रदान की जाती हैं। इसके साथ–साथ आश्रम स्कूलों में विद्यार्थियों के इस्तेमाल के लिए चारपाई, बेड, कबंल, चादरें, तकिया, मच्छरदानी आदि भी सुलभ कराए जाते हैं। इन स्कूलों में जो मूलभूत सुविधाएं प्रदान की जाती हैं, उनकी सूची अगले पृष्ठ पर प्रस्तुत है:

तालिका 13

आश्रम स्कूलों में अनुसूचित जनजातीय छात्रों को मिलने वाली सुविधायें

1. पाठ्यपुस्तकें, पठन-पाठन और लेखन सामग्री
2. स्कूल बैग, वर्दी और अन्य वस्त्र
3. चारपाई, बेड, कंबल, चादर, मच्छरदानी, बर्तन
4. भोजन
5. विद्यार्थियों का देशाटन
6. विशिष्ट कोचिंग
7. स्वास्थ्य सेवा
8. मेडिकल तथा इंजीनियरिंग कालेज के लिए बुक बैंक
9. खेलकूद तथा खेल सामग्री
10. विज्ञान प्रयोगशाला के उपकरण, पुस्तकालय की पुस्तकें, नक्शे तथा चार्ट आदि।
11. कक्षा 9-10 की बालिकाओं के लिए साईकिल

आश्रम स्कूलों को अपने मुख्य द्वार पर उपलब्ध वस्तुओं की सूची प्रदर्शित करना होता है। इन वस्तुओं लिए स्कूलों के आकार के अनुसार रु. 20,000 से लेकर 1,40,000 तक अनुदान दिया जाता है। स्कूल अनुदान तथा व्यय संबंधी खर्च का रख रखाव करते हैं और व्यय से संबंधित सभी रसीदें और कागजात भी संलग्न करते हैं। स्कूल अधीक्षक प्रति विद्यार्थी व्यय का दैनिक हिसाब रखता है जिसे ब्लाक स्तर का अधिकारी सत्यापित करता है। और तत्पश्चात समय-समय पर धनराशि का आवंटन करता है। प्रत्येक विद्यार्थी के नाश्ते और रात के भोजन पर 500-600 रुपये खर्च किया जाता है। दोपहर का भोजन कार्य दिवस के दिन केंद्रीय मध्याह्न भोजन योजना के अंतर्गत केंद्र से प्राप्त होता है।

जनजातीय विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति का प्रावधान

जनजातीय विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। आमतौर पर दो प्रकार की छात्रवृत्ति हैं- मैट्रिक पूर्व और मैट्रिक पश्चात। मैट्रिक पूर्व के अंतर्गत कक्षा 6 से 10 तक

के विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दी जाती है।

इसके अंतर्गत आवासीय बच्चों को रु. 300/- प्रतिमाह (बालकों के लिए) और रु. 325/- प्रतिमाह (बालिकाओं के लिए) छात्रवृत्ति दी जाती हैं। गैर-आवासीय विद्यार्थियों के लिए यह राशि कक्षा 6-8 के लिए रु. 10/- प्रतिमाह (बालकों के लिए), रु. 15/- प्रतिमाह (बालिका के लिए) और कक्षा 9-10 के लिए रु. 15/- प्रतिमाह (बालक) तथा रु. 20/- प्रतिमाह (बालिका) हेतु निर्धारित है।

इसके अलावा गरीब तथा आर्थिक रूप से पिछड़े बच्चों को मेरिट छात्रवृत्ति देने का भी प्रावधान है। यह छात्रवृत्ति कक्षा 9-10 के सीमित बच्चों को ही दिया जाता है। छात्रवृत्ति की राशि रु. 100/- प्रतिमाह (आवासीय बच्चों के लिए) और रु. 30/- प्रतिमाह गैर-आवासीय बच्चों के लिए निर्धारित है।

मैट्रिक पश्चात छात्रवृत्ति कक्षा 11-12, और उच्च शिक्षा में अध्ययनरत बच्चों को दी जाती है। इसके अंतर्गत छात्रवृत्ति की राशि रु. 235/- प्रतिमाह (आई टी आई के लिए) और रु. 740/- प्रतिमाह उच्च शिक्षा के लिए है। आवासीय विद्यार्थियों को गैर-आवासीय बच्चों से अधिक राशि प्रदान की जाती है। पी.जी. पाठ्यक्रम और अन्य उच्च अध्ययन के लिए रु. 740/- प्रतिमाह आवासीय बालक तथा बालिकाओं के लिए प्रदान किया जाता है। जबकि गैर आवासीय बच्चों के लिए रु. 330/- प्रतिमाह छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है।

इसी प्रकार डिप्लोमा तथा लघु अवधि के सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम के लिए आवासीय तथा गैर-आवासीय विद्यार्थियों को क्रमशः रु. 510/- प्रतिमाह और रु. 330/- प्रतिमाह की दर से छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। छात्रवृत्ति राशि संबंधी विवरण तालिका-14 में प्रस्तुत है।

छत्तीसगढ़ राज्य में मिडिल स्कूल (कक्षा 6-8 में) बच्चों को मासिक छात्रवृत्ति दस महीने तक मिलती है जो कि लड़कों के लिए 300 रुपये तथा लड़कियों के लिए 400 रुपये प्रति माह होती है। हाई स्कूल (कक्षा 9-10) में लड़कों को 400 रुपये तथा लड़कियों को 500 रुपये प्रति माह छात्रवृत्ति दस महीनों के लिये मिलती है। बच्चों को छात्रवृत्ति का भुगतान प्रत्येक चार महीने पर किया जाता है, प्रत्येक शैक्षणिक सत्र में सितंबर तथा जनवरी के महीने में।

तालिका-14

अनुसूचित जनजाति को प्रदान की जाने वाली छात्रवृत्ति

अध्ययन के विषय	श्रेणी	लड़के	लड़कियां
प्री-मैट्रिक छात्रवृत्ति			
	(i) आवासीय	रु. 300/- प्रतिमाह	रु. 300/- प्रतिमाह
	(ii) दैनिक छात्र		
	(a) कक्षा VI से VII	रु. 10/- प्रतिमाह	रु. 50/- प्रतिमाह
	(b) कक्षा VIII से X	रु. 15/- प्रतिमाह	रु. 20/- प्रतिमाह
प्री-मैट्रिक (मैरिट एवं विधिक छात्रवृत्ति)			
	(i) आवासीय (IX से X) प्रत्येक कक्षा से एक छात्र	रु. 100/- प्रतिमाह	रु. 100/- प्रतिमाह
	(ii) दैनिक छात्र (IX से X) प्रत्येक कक्षा से एक छात्र	रु. 30/- प्रतिमाह	रु. 30/- प्रतिमाह
पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्ति			
डिग्री, पी.जी. तथा उच्च अध्ययन	(i) छात्रावास छात्र	रु. 740/- प्रतिमाह	रु. 740/- प्रतिमाह
	(ii) दैनिक छात्र	रु. 330/- प्रतिमाह	रु. 330/- प्रतिमाह
सर्टिफिकेट तथा अन्य कोर्स	(i) छात्रावास छात्र	रु. 510/- प्रतिमाह	रु. 510/- प्रतिमाह
	(ii) दैनिक छात्र	रु. 330/- प्रतिमाह	रु. 330/- प्रतिमाह
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम हेतु कार्यक्रम	(i) छात्रावास छात्र	रु. 355/- प्रतिमाह	रु. 355/- प्रतिमाह
	(ii) दैनिक छात्र	रु. 185/- प्रतिमाह	रु. 185/- प्रतिमाह
पोस्ट मैट्रिक पाठ्यक्रम आई.टी.आई. पाठ्यक्रम	(i) छात्रावास छात्र	रु. 235/- प्रतिमाह	रु. 235/- प्रतिमाह
	(ii) दैनिक छात्र	रु. 140/- प्रतिमाह	रु. 140/- प्रतिमाह

आश्रम स्कूल में अध्यापन-अधिगम व्यवहार

आश्रम विद्यालयों की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह आवासीय होते हैं, और इनकी कार्य प्रणाली गैर आवासीय स्कूलों की कार्यप्रणाली से भिन्न होती हैं। आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, ओडिशा, छत्तीसगढ़ इन सभी राज्यों में आवासीय स्कूल एक ही प्रकार की दिनचर्या अपनाते हैं जिसे जवाहर-निवोदय विद्यालय में भी अपनाया जाता है तथा आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के राज्यों में भी अपनाया जाता है। कुछ स्कूल तो स्कूल के बाहर ही दैनिक टाइम टेबल को चस्पा कर देते हैं जिसमें स्कूल के दौरान तथा उसके बाद की विविध गतिविधियों की जानकारी दी जाती है। इसमें निरीक्षण अध्ययन भी सम्मिलित हैं, जिसमें अध्यापक बच्चों का निरीक्षण करते हैं और उनका गृह कार्य करने में मदद करते हैं तथा उनके संदेहों को दूर करते हैं जो अध्यापन के दौरान आते हैं।

सुबह की दिनचर्या सुबह प्रार्थना के साथ शुरू होती है, उसके बाद पढ़ाई 5.00 बजे शुरू करते हैं या 6.00 बजे यह सबकुछ भौगोलिक स्थान के मौसम और जलवायु पर निर्भर करता है फिर वहाँ स्नान के बाद नाश्ते के लिए तैयार होते हैं, खेल और शारीरिक गतिविधियों के बाद। जनजातीय क्षेत्रों में कुछ बच्चे सुबह में 08.00 या 01.00 बजे तक अपने दोपहर का भोजन करते हैं और स्कूल जाते हैं, इन आवासीय विद्यालयों में यहाँ विभिन्न वर्गों और विषयों के लिए समय सारणी है, दोपहर के भोजन के ब्रेक के साथ, जहाँ मध्याह्न भोजन मिलता है। प्राथमिक वर्गों में सामान्य रूप से बहु - ग्रेड शिक्षण अपनाया जाता है जबकि उच्च कक्षा वर्ग के लिए विषय वर्ग हेतु 35 से 40 मिनट का पीरीयड होता है और प्रति दिन 6 पीरीयड तथा अधिकतम प्रति सप्ताह 36-42 अवधि की अधिकतम सीमा के साथ पीरीयड लिये जाते हैं।

प्राथमिक कक्षाओं में सामान्य रूप से पंक्तियों में या स्कूल द्वारा प्रदान की गई मैट पर दीवारों के आसपास बैठने की पद्धति है, जबकि ऊपरी कक्षाओं में मेज और बेंच हैं शिक्षकों को स्कूलों में उनके बैठने हेतु मेज और कुर्सियाँ हैं जबकि कुछ में यह सुविधाएं नहीं हैं और वे बच्चों के साथ बैठते हैं और उन्हें सिखाने का कार्य सामान्य रूप से शिक्षकों को प्राथमिक स्तर पर कक्षा विशेष के लिए विशिष्ट कार्य दिया जाता है और वे उनकी गतिविधियों पर नजर रखते हैं और उनके संदेहों को स्पष्ट करते हुए उन्हें विषय का अध्यापन करते हैं। बच्चों के समूह को पढ़ने और अभ्यास लेखन हेतु कार्य दिया

जाता है। समूह द्वारा प्राप्त दक्षताओं पर आधारित अगला कार्य दिया जाता है। कई बार शिक्षक बच्चों को होमवर्क के रूप में कुछ कार्य देते हैं।

शिक्षकों को आदिवासी बच्चों को पढ़ाने में कोई कठिनाई नहीं होती क्योंकि अब यह नीति राज्यों में बन गयी है कि किन स्कूलों में आदिवासी शिक्षकों की नियुक्ति होगी। शिक्षण कार्यों में शिक्षित आदिवासी युवाओं की नियुक्ति के कारण, आश्रम स्कूल में कक्षाओं का अध्यापन मुश्किल नहीं है, इन शिक्षित आदिवासी युवाओं को प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ाने में उचित प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है और क्लस्टर अकादमिक समन्वयकों द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। इन आदिवासी शिक्षकों द्वारा स्थानीय बोलियों में पढ़ाने से अधिक लाभ है और पाठ्यपुस्तकों और बच्चों में विषय की व्याख्या अच्छी तरह से होती है। इन शिक्षकों के साथ बातचीत में बच्चों को कोई समस्या नहीं है, उनके लहजे, भाषा, स्थानीय शब्द आदिवासी बच्चों के लिए भी समझना आसान है। उच्च कक्षाओं को पढ़ाने में थोड़ी बहुत समस्या है जबकि प्राथमिक वर्गों के शिक्षण में कोई तीव्र समस्या नहीं है। कक्षा अध्यापकों की कमी वाले कुछ स्कूलों ने कई उपाय अपनाये हैं। बहु कक्षा शिक्षण हेतु, स्कूल अधीक्षक और परिचर और चौकीदार प्राथमिक कक्षा को पढ़ाते हैं। यह दिलचस्प है कि जनजातीय क्षेत्रों में नौकरियों की विभिन्न श्रेणियों में स्थानीय जनजातीय युवाओं को रोजगार की सरकार की नीति के तहत स्थानीय आदिवासी युवा जो 8वीं, 9वीं और 10वीं कक्षा को पूरा कर चुके हैं, रोजगार में प्राथमिकता पाने के लिए सक्षम हैं। इनको शिक्षकों, परिचर, चौकीदार और आश्रम स्कूलों में वाटरमैन की नौकरी मिल रही है। इन शिक्षित युवाओं को स्कूल में शिक्षक की आवश्यकताओं की कमी को पूरा करने के लिये और जब भी नियमित रूप से शिक्षकों को प्रशिक्षण और अन्य सरकारी कार्य के लिए जाना होता है तो यह कक्षाओं में पढ़ाते हैं। शिक्षा विभाग ने भी अनुबंध शिक्षकों को ग्रेड प्रथम, द्वितीय और तृतीय, प्राथमिक, मध्य और उच्च विद्यालय की आवश्यकता के अनुसार 3,000, 4000 और 5,000 रुपये का क्रमश: समेकित वेतन प्रदान किया है, और यह स्कूल के स्तर के अनुसार वे चार से पांच साल से पढ़ा रहे हैं।

जबकि आंध्र प्रदेश, ओडिशा और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में प्राइमर विशेष रूप से जनजातीय प्राथमिक स्कूल विकसित कर रहे हैं और यह सफलतापूर्वक सर्व शिक्षा

तालिका-15

कक्षा शिक्षण और शिक्षकों की कमी पर काबू पाने के लिए उठाए गए कदम

बहुकक्षीय शिक्षण	अस्थायी शिक्षकों की नियुक्ति	स्कूल अधीक्षक तथा अन्य द्वारा शिक्षण कार्य	अतिरिक्त कक्षाएं साथ-साथ पढ़ाना
90% विद्यालयों में अपनाया गया	60-70% अनुबंध शिक्षक	विद्यालयों में 90% गैर शिक्षण स्टाफ की सेवाओं का उपयोग	40-50% शिक्षक द्वारा अन्य शिक्षकों की जिम्मेदारियां

अभियान के तहत किया जा रहा है। इन प्राइमरों द्वारा धीरे-धीरे आदिवासी बच्चों को शिक्षित किया जा रहा है और उन्हें प्राथमिक स्तर पर मुख्यधारा की भाषा में प्रशिक्षित कर दिया गया है ताकि क्षेत्रीय भाषाओं से परिवर्तित होने पर जनजातीय बच्चों की शिक्षा प्रभावित नहीं करेगा। यह एक स्थानीय आदिवासी बोली के साथ आदिवासी बच्चों को पढ़ाने हेतु तथा पाठ्यपुस्तकों के साथ जिससे बच्चे बहुत अच्छी तरह से परिचित हैं, स्थानीय सांस्कृतिक पहलुओं को समेकित करने का प्रयास है।

आश्रम विद्यालयों में शिक्षक कुछ सरल प्रकार के परीक्षण करते हैं- मौखिक, लिखित और कुछ कक्षाओं में परीक्षण या आकस्मिक परीक्षा द्वारा जो उन्हें समय-समय पर बच्चों के प्रदर्शन को समझने के लिए सक्षम बनाता है। इस आधार पर प्रत्येक कक्षा में बच्चे की सीखने की क्षमता की जांच हो जाती है। चौथी कक्षा तक के बच्चों को उत्तीर्ण करने हेतु हाज़िरी प्रमुख कारक बनती है। कुछ राज्यों में 5वीं कक्षाओं के छात्रों को सार्वजनिक परीक्षाओं का सामना करना पड़ता है और अगर वे असफल होते हैं तो एक ही कक्षा में दो से तीन वर्षों के लिए उन्हें बनाए रखा जाता है। लेकिन कितने साल शिक्षक स्कूल में बच्चों को रखते हैं, इसका कोई विशिष्ट जवाब नहीं मिला, ऐसे में विफल रहा बच्चा एक या दो साल के लिए स्कूल में रहता है तथा उसके बाद स्कूल छोड़ देता हैं। आश्रम विद्यालयों में प्रतिधारण दर अन्य औपचारिक स्कूलों की तुलना में बेहतर होती है, क्योंकि वे आवासीय संस्थान है। सुविधाओं, और लंबे समय से स्कूलों

के साथ संबद्धता इन बच्चों को एक लंबे समय (सुजाता, के. एच. 1996) के लिए अपनी पढ़ाई जारी रखने में सक्षम बनाती है।

यह भी देखा गया है कि सामान्य स्कूलों में अनुशिक्षण आश्रम स्कूलों के अनुसार होती है। प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षण प्रक्रियाओं में ज्यादातर रटने पर जोर होता है। प्राथमिक स्तर में सबसे ज्यादा मुखर और प्रतिभाशाली बच्चे को पढ़ने के अभ्यास में अन्य बच्चों के समूह का नेतृत्व करना होता है। शिक्षक चार्ट, नक्शे, और अक्षर द्वारा कक्षाओं में बच्चों को पढ़ाने आदि जैसे सभी शिक्षण सहायता सामग्री का उपयोग करते हैं। उच्च स्तर पर विज्ञान किट, ग्लोब, चार्ट और कक्षाओं को पढ़ाने के लिए गणित किट हैं। सर्व शिक्षा अभियान के तहत किए गए प्रावधान के तहत आश्रम स्कूलों में रु. 500/- प्रति शिक्षक तथा रु. 2000/- प्रति स्कूल स्वतंत्र शिक्षण और अधिगम सामग्री का विकास करने हेतु दिया जाता है। इसके अलावा, आसपास के क्लस्टर संसाधन केंद्रों के लिए नियमित यात्राओं के दौरान विचारों के आदान-प्रदान और साथियों के साथ बातचीत के दौरान कुछ कठिन विषय के मामलों की समझ और उन्हें स्कूल में पढ़ाने के लिए क्षमता उत्पन्न होती है। हालांकि शिक्षकों को वर्ष की शुरूआत से पहले पाठ योजनाओं को विकसित करने और स्कूलों के प्रमुखों के साथ चर्चा की आवश्यकता रहती है। ज्यादातर यह पाया गया कि शिक्षक ऐसी कोई पाठ योजना हर साल विकसित नहीं कर रहे हैं। स्कूलों में कुछ उच्च कक्षा के शिक्षक भी स्थानीय विषयवार गाइड बुक का उपयोग 'कुंजी' के रूप में करते हैं। बच्चों को वे कहते हैं कि यह परीक्षा केंद्रित है, हालांकि, यह देखा गया है कि सीखने की प्रक्रिया का बहुमत कक्षाओं के अंदर है और बहुत कम प्रयास स्कूली शिक्षा के बाद सीखने के लिए किया गया। स्कूल के बाद का समय बच्चे अपने गृह-कार्यों को पूरा करने और कुछ गणित का अभ्यास करने के लिए उपयोग करते हैं। (90% स्कूलों में कमजोर शिक्षार्थियों के लिए उपचारात्मक शिक्षण नहीं है (पंडा, बी.के., 2000)। क्लस्टर संसाधन समन्वयक नियमित रूप से दौरा करके स्कूल स्तर पर जानकारी एकत्र करते हैं और ब्लॉक स्तर के अधिकारियों ने भी समय-समय पर दौरा किया परंतु पर्यवेक्षकों द्वारा यह दौरे ज्यादातर औपचारिक ही होते हैं। (तालिका-16)

तालिका-16
पर्यवेक्षकों द्वारा दौरा

ब्लॉक शिक्षा अधिकारी	ब्लॉक कल्याण अधिकारी	क्लस्टर शैक्षणिक संयोजक	जिला शिक्षा अधिकारी	ब्लाक संसाधन केंद्र समन्वयक
एक बार 6 महीने में	एक बार 6 महीने में	हर महीने	वर्ष में एक बार	साल में दो बार

आश्रम स्कूलों में शारीरिक तथा अन्य गतिविधियां

आश्रम स्कूलों में स्कूलों में रह रहे बच्चों के लिए खेल-कूद के सामान हेतु प्रावधान है। कुछ उच्च स्कूलों में सामान्य खेल सामान जैसे फुटबाल, बालीबाल और कैरमबोर्ड उपलब्ध हैं। स्कूल के पास ढोलक और हारमोनियम जैसे वाद्य यंत्र भी हैं। हालांकि छात्र दौड़, कब्बडी, खो-खो और स्थानीय खेल भी खेलते हैं। 82% विद्यालयों में खेल के मैदान विकसित नहीं है। प्राथमिक विद्यालयों में बच्चे स्थानीय खेल खेलते हैं और तीर कमान का अभ्यास करते हैं। 90% स्कूलों में खेल-कूद के अध्यापक का प्रावधान नहीं है। खेलों के बारे में जानने वाले अध्यापक इनको पढ़ा रहे थे और कुछ स्कूलों में जहां खेलों में दिलचस्पी रखने वाले शिक्षक नहीं थे वहां किसी भी प्रकार की खेल-कूद और सांस्कृतिक गतिविधि नहीं थी।

विद्यालय में सांस्कृतिक गतिविधि का चलन बहुत कम था। कभी-कभी बच्चे अपने स्थानीय गाने गाते थे और स्थानीय संगीत बजाते थे। स्कूल में उपलब्ध वाद्य यंत्रों द्वारा स्कूल में स्थानीय त्यौहार और कार्यक्रम आयोजित किये जाते थे। सबसे ज्यादा स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस परेड, राष्ट्रीय गान के साथ मनाया जाता है। बच्चों और समुदाय में मिठाईयाँ बांटने के कार्यक्रम का आयोजन भी किया जाता है।

आश्रम स्कूलों में बच्चों की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को सुलझाने हेतु प्रत्येक वर्ष प्रत्येक स्कूल में बच्चों की स्वास्थ्य संबंधी जांच की जाती है। स्थानीय स्वास्थ्य केंद्र के चिकित्सक अपने कार्य क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले सभी स्कूलों का भ्रमण करते हैं, कुछ स्कूल उसका रिकार्ड भी रखते हैं। स्वास्थ्य रिकार्ड में छात्र का नाम, नामांकन

रजिस्टर के अनुसार होता है और प्रत्येक छात्र के नाम के सामने 'सही' का चिह्न तथा स्वास्थ्य अधिकारी हस्ताक्षर होता है। आवासीय स्कूलों में छात्रों को जलवायु में परिवर्तन के साथ अक्सर मलेरिया, पेट में कीड़े तथा स्कर्वी इत्यादि जैसी बीमारियों की शिकायत रहती है।

शिक्षकों का भी यह कहना है कि जब तक बच्चे आवासीय स्कूलों में रहते हैं तब तक उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है परंतु छुट्टियों के दौरान घर से वापस स्कूल आने पर अधिकतर बच्चे बीमार हो जाते हैं और सामान्य स्वास्थ्य प्राप्त करने में बहुत अधिक समय लग जाता है।

कक्षा अध्यापक से पूछने पर यह पता चला है कि उनके पास कोई प्राथमिक चिकित्सक नहीं है और वह पूर्ण रूप से प्रत्येक बीमारी के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल केंद्र पर निर्भर हैं। हालांकि यहां पेशेवर डाक्टर नहीं होते, इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

समापन टिप्पणियां

हाल ही में दूरस्थ और दुर्गम क्षेत्रों में अनुसूचित जनजाति के बच्चों को स्कूली शिक्षा के लिए पहुंच प्रदान करने में राज्यों तथा केंद्रीय सरकारों द्वारा किये गये प्रयास उल्लेखनीय रूप से प्रभावी हैं। ई.जी.एस और ए.एस के नाम से प्रसिद्ध क्रमशः शिक्षा गांरटी स्कीम और वैकल्पिक स्कूली शिक्षा के द्वारा छोटी और बिखरी आदिवासी बस्तियों में अपनी पहुंच बनाने में सरकार सक्षम हो पायी है।

राज्यों में जनजातीय कल्याण विभाग जनजातीय बच्चों को आकर्षित करने और उनकी जरूरतों को पूरा करने के उद्देश्य से निरंतर प्रयास कर रहे हैं। इसके अलावा देशभर में सर्व शिक्षा अभियान के तहत प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के साथ-साथ वंचित समूह की शिक्षा हेतु समान अवसर सुलभ कराने पर बल दिया जा रहा है। इसके अंतर्गत आश्रम स्कूलों को वित्तीय सहायता प्रदान की गई है और जब आवश्यकता होती है तो संविदा के आधार पर अध्यापक नियुक्त किए गए हैं। सी आर जी में आश्रम स्कूल के अध्यापकों के साथ अनुक्रिया से शैक्षणिक मदद की जा रही है।

भारतीय विकास योजना में जनजातीय लोगों को सबसे हाशिए पर पाया गया है। विगत 60 वर्षों से जनजातीय उपयोजना के अंतर्गत जनजातीय विकास के लिए प्रारंभिक

शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जा रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 तथा उसके उत्तरवर्ती कार्यक्रमों में जनजातीय शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। कई प्रकार की प्रोत्साहन योजनाएं संचालित की जा रही हैं। सभी पंचवर्षीय योजनाओं में जनजातीय शिक्षा को महत्व प्रदान किया गया।

दूरवर्ती जनजातीय क्षेत्रों में जनजातीय बच्चे अधिक संख्या में स्कूल से बाहर हैं। इसका मुख्य कारण इस क्षेत्र में शैक्षिक सुविधाओं का अभाव है। जनजातीय आबादी मुख्य गांवों से दूर होती है जहां स्कूल की सुविधा नहीं है। अभी भी जनजातीय परिवार बच्चों को स्कूल भेजने के प्रति अधिक जागरूक नहीं हैं। इसका मुख्य कारण अभिभावकों का अनपढ़ होना है। इसके अलावा स्कूल अध्यापक भी प्रेरक की भूमिका निभाने में असफल हैं। अधिकांश बच्चे मां-बाप के साथ कृषि, बागवानी, पशुपालन, मजदूरी, उत्खनन, घरेलू कामकाज में लगा दिए जाते हैं।

केवल घरेलू कारणों से ही जनजातीय बच्चों का अधिगम स्तर कम नहीं है बल्कि शिक्षा का माध्यम भी एक बहुत बड़ी बाधा है जो उनकी मातृ भाषा से बिल्कुल अलग है। इसके अलावा शिक्षक-शिक्षण, अधिगम संबंधी गतिविधियां तथा अन्य स्कूली गतिविधियां उनके परिवेश से एकदम कटी हुई हैं जिसके कारण वे आत्मसात नहीं हो पाते। इस दिशा में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत संचालित कार्यक्रमों ने जनजातीय और गैर जनजातीय बच्चों के अधिगम संबंधी अंतराल को पाटने में सफल दिखाई पड़ते हैं।

जनजातीय क्षेत्र के आश्रम स्कूलों में अभिभावकों ने बताया कि वे आश्रम स्कूल की व्यवस्था से पूरी तरह संतुष्ट हैं। स्कूल में बच्चों को सारी सुविधाओं के साथ देखभाल ठीक प्रकार से की जाती है। अगर ये सुविधाएं नहीं मिलतीं तो हमारे लिए बच्चों को स्कूल भेजना संभव नहीं होता और ये हमारे बच्चे पढ़ाई छोड़ हमारे काम धंधों में हाथ बटाते। जब उनसे पूछा गया कि वे बच्चों को पढ़ा-लिखाकर क्या बनाना चाहते हैं? उनका जवाब था कि वे अपने बच्चों को जनजातीय क्षेत्र में वन अधिकारी और शिक्षक बनाना चाहते हैं। वे बच्चों को डाक्टर तथा इंजीनियर बनाने की सोच से अनभिज्ञ लग रहे थे।

आंध्र प्रदेश में सोसायटी अधिनियम के अंतर्गत जनजातीय क्षेत्र में एक माडल आवासीय स्कूल के रूप में आश्रम स्कूल की संकल्पना की गई थी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति

1986 और कार्य योजना 1992 में भी जनजातीय क्षेत्र में आश्रम स्कूल खोलने पर विशेष बल दिया गया था। जवाहर नवोदय विद्यालय की अवधारणा आश्रम स्कूल से ही उभर कर आई थी। जवाहर नवोदय विद्यालय केंद्र द्वारा वित्तपोषित है और इसीलिए बहुत सफल रहा है जबकि आश्रम स्कूल जनजातीय क्षेत्र में निरंतर संघर्ष कर रहे हैं। इनमें समुचित संसाधन, वित्तीय अनुदान, मानव संसाधन और प्रभावकारी प्रबंधन का अभाव है। आश्रम स्कूलों की बढ़ती संख्या, बढ़ते दाखिले तथा शिक्षकों की कमी का भारी दबाव जनजातीय कल्याण विभाग पर पड़ रहा है जिनमें पर्याप्त संख्या में स्टाफ नहीं है। इस कारण इन स्कूलों की नियमित देखरेख और पर्यवेक्षण नहीं हो पाता है।

आश्रम स्कूलों के सुधार हेतु कुछ महत्वपूर्ण बिंदु निम्नलिखित हैं जिन पर तत्काल कार्रवाई करने की आवश्यकता है:

(1) स्थानीय जनजातीय भाषा जानने वाले प्रशिक्षित अध्यापक जो जनजातीय बच्चों की शिक्षण- अधिगम संबंधी जरूरतों को समझते हों,

(2) जनजातीय भाषा में शिक्षण और अनुदेशनात्मक सामग्री की उपलब्धता,

(3) सी आर सी और बी आर सी की सुविधाओं का संयोजन ताकि शिक्षकों को पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जा सके,

(4) स्कूलों को समय पर अनुदान का भुगतान,

(5) समय से छात्रवृत्ति का भुगतान, और

(6) अध्यापकों का नियमित प्रशिक्षण।

इसके अतिरिक्त जनजातीय कल्याण विभाग में कुछ ऐसी कार्य प्रणाली बनाई जाए जिससे कि इन स्कूलों की नियमित मानीटरिंग की जा सके और यथावश्यकता शैक्षणिक और आधारभूत सुविधाएं प्रदान की जा सके। इससे आश्रम स्कूलों को सशक्त और प्रभावकारी बनाया जा सकता है।

संदर्भ

आनंद जी., (1994) *आश्रम स्कूल इन आंध्र प्रदेश: ए केस स्टडी ऑफ सेन्सस आफ नालामलाई हिल्स,* कॉमन वेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली

सेन्सस ऑफ इंडिया, (2001) *प्रोविजनल पॉपुलेशन टोटल्स,* डायरक्ट्रेट ऑफ सेन्सस ऑपरेशन्स, नई दिल्ली

डेनिसन, बिल एंड शेन्टन केन, (1987) *चैलेंजेज इन एजुकेशनल मैनेजमेंट: प्रिंसिपल इन टू प्रैक्टिस,* क्रूम हेल्म, न्यूयार्क

देसाई बी. एंड पटेल, ए., (1981) *आश्रम स्कूल्स ऑफ गुजरात: एन इवाल्युएटिव स्टडी,* ट्राईबल रिसर्च एंड ट्रेनिंग सेन्टर, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, (2005) *सलैक्टेड एजुकेशनल स्टेटिक्स,* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, (2006) *सलैक्टेड एजुकेशनल स्टेटिक्स,* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, (2007) *सलैक्टेड एजुकेशनल स्टेटिक्स,* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

गवर्नमेंट ऑफ ओडिशा, (2007) *इन्फॉरमेशन ऑन आश्रम स्कूल्स,* वेब-साइट ऑफ डिपार्टमेंट ऑफ हरिजन एंड ट्राइबल वैलफेयर डिपार्टमेंट भुवनेश्वर

गोविन्दा आर., (एड), (2001) *इंडिया एजुकेशन रिपोर्ट,* न्यूपा एंड आक्सफोर्ड प्रैस, नई दिल्ली

हरदिया आर.सी. (1992) *ट्राइबल एजुकेशन फार कम्युनिटी डवलपमेंट: ए स्टडी आफ स्कूलिंग इन द तलसारिया मिशन एरिया,* कनसैप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली

झा, पी., (1985) *एन इवाल्युएटिव स्टडी आफ द हॉस्टल एंड आश्रम फार ट्राइबल गर्ल स्टूडेंट,* ट्राइबल रिसर्च इंस्टीट्यूट, भोपाल, सीआईटी इन बुच एम.बी. (एड) फोर्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन, बोर्ड

कुन्डू एम., (1994) *ट्राइबल एजुकेशन: न्यू पर्सपैक्टिव,* ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

पैसे, ए., (1981) *आग्रेनाइजेशन एंड मैनेजमेंट इन स्कूल्स,* लाँगमैन, लन्दन

पंडा बी.के. (1996) *फंक्शन्स एंड आग्रेनाइजेशन आफ ट्राइबल स्कूल्स,* अनामिका, नई दिल्ली जनजातीय क्षेत्र में आश्रम स्कूल का संगठन

पंडा बी.के. (2000) *आग्रेनाइजेशन ऑफ स्कूल्स इन ट्राइबल एरिया,* परिप्रेक्ष, नं.7, वाल्यूम 1-2, अप्रैल-अगस्त, न्यूपा, नई दिल्ली

पंडा बी.के. (2008) *डबलपमेंट आफ द शिड्यूल ट्राइब्स - ए पर्सपैक्टिव,* मिमियो, न्यूपा, नई दिल्ली

पंडा एस.सी., (1983) *एन इम्पेरिकल स्टडी आफ एजुकेशन आफ ट्राइबल इन ओडीशा,* बुच एम. बी. (एड) फोर्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन, वाल्यूम II, 1983-88, एन.सी.ई. आर.टी., नई दिल्ली, पृ. 1448

पटेल, एस., (1991) *ट्राइबल एजुकेशन इन इंडिया,* मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली

प्रताप, डी.आर. राजू, सी.सी. एंड राव, एम.वी.के., (1971) *स्टडी आफ आश्रम स्कूल्स इन ट्राइबल एरिया आफ आंध्र प्रदेश,* ट्राइबल कल्चर रिसर्च एंड ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट, हैदराबाद, इन बुच एम.बी. (एड) थर्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन, बड़ौदा

रैड, इवान, (1978) *सोशियोलाजिस्ट पर्सपैक्टिव आन स्कूल एंड एजुकेशन,* ओपन बुक्स, लन्दन

सुजाता के., (1983) *एन इन डैप्थ स्टडी आफ आश्रम स्कूल्स इन आंध्र प्रदेश,* मिमियो, न्यूपा, नई दिल्ली

सुजाता के., (1983) *एजुकेशन इन आश्रम स्कूल्स : ए केस स्टडी आफ अदिलाबाद डिस्ट्रिक्ट आफ आंध्र प्रदेश,* मिमियो, न्यूपा, नई दिल्ली

गवर्नमेंट आफ ओडीशा, (2007), *इन्फारमेशन आन आश्रम स्कूल्स,* वेब-साइट आफ डिपार्टमेंट आफ हरिजन एंड ट्राइबल्स वेलफेयर डिपार्टमेंट, भुवनेश्वर

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 1, अप्रैल 2011

दलित शिक्षा का समाजशास्त्रीय अवलोकन

सुजीत कुमार चौधरी*

भारत में दलित वर्ग को न केवल शैक्षणिक स्तर पर बल्कि आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृति आधार भी निम्न स्थान प्राप्त है। इसका मूल कारण है वर्षों से उच्च व सवर्ण वर्गों द्वारा सभी स्तर पर दलितों के साथ भेदभाव। इन्हें समाज में विभिन्न प्रकार के विसंगतियों (गैर-बराबरी), छूआछूत, असंवेदनशीलता अमानवीयता, शोषण आदि का हर दिन शिकार होना पड़ता है। ग्रामीण स्तर पर तो इनकी अवस्था और भी जटिल एवं निम्नतम है और समाज में इन दलितों के साथ न जाने किस-किस प्रकार का भेदभाव होता है।

शिक्षा एवं समाज के बीच अन्योन्याश्रित संबंध है। यहाँ पर इसका वर्णन दलित समुदाय पर केन्द्रित किया गया है। कांचा इलैया ने स्कूली संरचना के व्यावहारिक स्तर को परिलक्षित करते हुए कहा है– ''...विद्यालय के अध्यापक का हमारे प्रति रवैया उसकी जातीय पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है। अगर वह ब्राह्मण होता तो हमसे घृणा करता। वह हमारे सामने ही हमसे कहता कि कलयुग या बुरे समय का ही असर है कि उसे हमारे जैसे शूद्रों को पढ़ाने के लिए मजबूर किया जा रहा है। लेकिन आजादी मिलने के बाद जब विद्यालय हमारे लिए खोल दिये गये तब वहाँ विद्यालय के अध्यापक हमारे खिलाफ थे। पाठ्यपुस्तकों की भाषा हमारे खिलाफ थी। हमारे घरों में जो संस्कृति थी, वही संस्कृति हमारे विद्यालयों में नहीं थी।'' (इलैया 2003:11-14) पुनः झा एवं झींगरन (2002:96) पाते हैं कि ''दलित बच्चे अनावश्यक रूप से शारीरिक एवं मानसिक यातना झेलते हैं। शिक्षक दलित बच्चों में या उनकी परिस्थितियों में सकारात्मक बदलाव को लेकर कोई खास रूचि नहीं दिखाते हैं, उनके अनुसार दलित अकर्मण्य हैं।''

उपरोक्त वर्णित वाक्यों से यह स्पष्ट होता है कि दलित समुदाय के लोगों को, व्याहरतः बहुत अपमानित होना पड़ता है। मेरा शोध आदिवासी लोगों को लेकर यह

* सहायक प्रोफेसर, हिदायतुल्लाह राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय रायपुर (छत्तीसगढ़)
sujitjnu@gmail.com (e-mail)

स्पष्ट करता है कि न केवल दलित बल्कि आदिवासी समुदाय के लोगों को भी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक शोषण का शिकार होना पड़ता है। यह शोध वास्तव में झारखंड राज्य के दो विभिन्न जिलों के अलग-अलग दो गांवों का तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित था (2008)।

भारतीय संविधान प्रत्येक नागरिक को समान अवसर एवं अधिकार प्रदान करने की बात करता है परंतु आजादी के 65 साल बाद भी समाज के वर्चस्वशाली तबके दलितों पर अत्याचार करने से नहीं चुकते हैं। हरियाणा का गोहाना हो या महाराष्ट्र का खैरलांगी, दलितों पर होने वाले अत्याचार एक ही मानसिक अवस्था को दर्शाता है। अत: यहां सवाल यह उठता है कि क्या भारतीय संविधान में किए गए विभिन्न प्रकार के अनुबंधों के बाद भी इनकी सामाजिक अवस्था में परिवर्तन हुआ है। प्रोटेक्टिव डिसक्रिमिनेशन की संवैधानिक नीति के बावजूद क्या उनकी स्थिति में वह सुधार आता है जो भारत के आधुनिक व्यवस्था के प्रतिपादक चाहते थे? आज भी दलितों को शैक्षणिक संस्थानों में विभिन्न प्रकार के भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। यह भेदभाव मूलरूप में शिक्षकों का पढ़ाई के प्रति दूरी बरतने एवं शिक्षकों का दलित बच्चों के अलगाव की प्रवृत्ति के रूप में देखने को मिलता है। अत: यह भेदभाव निश्चित रूप में जन्म आधारित है न कि उसके ज्ञान एवं वैयक्तिक गुण पर आधारित है। अम्बेडकर (राजकिशोर : जाति का जहर) के अनुसार जाति भेद वस्तुत: श्रम का नहीं, श्रमिकों का विभाजन है। यही कारण है कि यहाँ नीचे गिराई गई जाति का मनुष्य उपरवाली जाति का पेशा नहीं कर सकता है। यहाँ अछूत हलवाई का काम नहीं कर सकता, परचूनी नहीं कर सकता, चाय या पान की दुकान नहीं खोल सकता, पुरोहित नहीं बन सकता। ऐसा कोई सामाजिक कार्य नहीं जिसमें अछूत से ब्राह्मण तक समान भाव से लग सकें।

वास्तव में अम्बेडकर का श्रमिक विभाजन का यह विचार समाज में व्याप्त एक महत्वपूर्ण विसंगति को दर्शाता है जिसके अंतर्गत जन्म आधारित तथ्यों को प्राथमिकता दी जाती है न कि व्यक्ति विशेष का मेहनत एवं ज्ञान।

उपरोक्त वर्णन के अतिरिक्त कुछ ऐसे महत्वपूर्ण शोध यह बताते हैं कि दलित लोग विभिन्न शिक्षा कार्यक्रमों के लाभ को भी उठाने में विफल रहे हैं। चानना (1993) ने अनुसूचित जाति व जनजाति अल्पसंस्थकों तथा महिलाओं में उच्च शिक्षा की स्थिति के सम्बन्ध में किए गए। अध्ययन तथा शिक्षा -नितियों के पुन: अवलोकन के दौरान उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में पाया कि शिक्षा कार्यक्रम शिक्षा-नीतियों और उनको व्यवहार

में लाने के मध्य के अंतराल को कम करने में असफल रहे हैं।

झा एवं झींगरन (2002) ने दलित बच्चो की स्कूली शिक्षा पर किए गए अपने अध्ययन में यह माना कि शिक्षा एक लम्बी प्रक्रिया है और गरीब परिवारों के लिए लम्बी अवधि तक बच्चों को स्कू ल भेजना संभव नहीं होता, सामाजिक और आर्थिक रूप से विपन्न दलित परिवारों के लिए यह और भी मुश्किल है। दूबे और माथुर (1972) इस बात को प्रमुख रूप से इंगित करते हैं कि अनुसूचित जातियों को मिलने वाली सरकारी सुविधाएं या उनका वितरण प्राय: असमान ही है।

भारतीय समाज के प्रति यह भी एक ज्वलंत तथ्य है कि विभिन्न संवैधानिक एवं सरकारी फायदा दलित वर्ग के केवल कुछ तबकों तक ही मिल पाया है। जिसको इन फायदों प्रावधानों की जरूरत है वह इससे पूर्णरूप से अनभिज्ञ रहा है। इसी बात को विस्तृत रूप में राम (1998) ने कहा है कि भारत में विकास के फायदों का प्रावधान अनुसूचित जातियों व जनजातियों को एक सामाजिक श्रणी के रूप में किया गया है, जबकि इनका फायदा व्यक्ति विशेष या परिवार विशेष को ही मिलता है। साथ ही वे बताते हैं कि क्यों बहुसंख्य दलित जातियों की पहुँच इन अवसरों तक नहीं बन पाती है। इनमें मुख्यत: वे नीतियों व प्रावधानों को ढंग से लागू न करना, दलितों में शिक्षा की कमी, जागरूकता की कमी, प्रोत्साहन की कमी, इत्यादि को मानते हैं। साथ ही वे इस बात पर भी जोर देते हैं कि कुछ जातियों के कुछ सदस्यों ने सरकारी प्रावधानों को उपयोग में लाकर यह महसूस किया है कि शिक्षा उपयोगी है तथा वे अपने परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने हेतु अपने बच्चों को स्कूल भेज रहे हैं।

दलित समुदाय की साक्षरता का अवलोकन

हम जानते हैं कि भी अनुसूचित जाति का साक्षरता का प्रतिशत काफी कम था, जिसमें इन दिनों में बढोत्तरी हुई है। 1961 में अनुसूचित जाति का साक्षरता प्रतिशत 10.27 था जो 2001 में बढ़कर 54.69 प्रतिशत हो गया है। परंतु महिलाओं का प्रतिशत अभी भी पुरुषों की तुलना में काफी है। 1961 में पुरुषों की साक्षरता 16.96 प्रतिशत थी जो बढ़कर 2011 में 82.14 प्रतिशत हो गयी है। परंतु वही दूसरी और महिलाओं का प्रतिनिधित्व 1961 में सिर्फ 3.29 प्रतिशत था, जो 2011 में बढ़कर 65.46 हो गया है। स्पष्टत: दलित वर्ग के शैक्षणिक स्तर में अभूतपूर्व परितर्वन आया है परंतु यह परिवर्तन सिर्फ कुछ तबकों तक ही सीमित रहा है। वह परिवर्तन मूल रूप में हमें दलितों के उच्च

वर्ग, उच्च मध्यम वर्ग एवं शहरी क्षेत्रों में देखने को मिलता है। इसी तथ्य को नन्दु राम ने दलित के इन वर्गों को 'नया मध्यम वर्ग' कहा है। इनका मानना है कि दलितों का विकास सभी जगहों एवं सभी स्तरों पर एक समान नहीं है, यह कुछ खास तबकों तक ही सीमित है। निश्चित रूप से सामाजिक धरातल पर यह तथ्य सत्य प्रतीत होता है।

दूसरी बात जो दलितों की शिक्षा से संबंधित है वह अनुसूचित जाति के बच्चों के शिक्षा में प्रतिनिधित्व के संदर्भ में है। प्राथमिक (वर्ग I-V), उच्च प्राथमिक (वर्ग VI-VIII), एवं माध्यमिक उच्च माध्यमिक (IX-XII) स्तरों पर अनुसूचित जाति के बच्चों के नामांकन में हाल के वर्षों में अभूतपूर्व वृद्धि देखने को मिली है, जो 1980 से बढ़कर 2005-06 में 2.25 (प्राथमिक), 3.91 (उच्च प्राथमिक) एवं 4.52 (माध्यमिक) गुण वृद्धि देखने को मिली है। यह तथ्य इस बात को स्पष्ट करता है कि दलितों की शिक्षा में काफी परिवर्तन हुआ है तथा हो रहा है। परंतु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि इन वर्गों का ड्रापआउट दर सामान्य वर्गों की तुलना में बहुत अधिक है। हाल के वर्षों में इसमें काफी सुधार हुआ है। 1990-91 में यह प्रतिशत था, जो 2004-05 में घटकर 34.2 प्रतिशत हो गया है। अगर हम उच्च प्राथमिक शिक्षा की बात करें तो 1990-91 में यह प्रतिशत 67.8 प्रतिशत था, जो 2004-05 में घटकर 57.3 प्रतिशत हो गया है। परंतु माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर यह दर बहुत ही अधिक है। 1990-91 में यह 77.7 प्रतिशत था जो 2005-06 में घटकर 71.3 प्रतिशत हो गया है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि ज्यों-ज्यों शिक्षा का स्तर बढ़ता है इसके प्रतिशत में कमी आती जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा के निम्न स्तर पर स्कूल त्याग दर अधिक है। समाजशास्त्रियों एवं शिक्षाविदों ने इसका कारण गरीबी, सामाजिक एवं शैक्षिक भेदभाव एवं शिक्षा के प्रावधानों में जागरूकता की कमी को बताया है।

यद्यपि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा इस क्षेत्र में काफी प्रयास किया गया है परंतु धरातलीय रूप में इसका लाभ इन वंचित लोगों तक नहीं पहुच पाया है जिसका प्रमुख कारण कार्यक्रम के कार्यान्वयन में भ्रष्टाचार एवं अनियमितता है।

भारत सरकार द्वारा चलाये जा रहे सर्व शिक्षा अभियान से इन वर्गों में शैक्षिक रूप से विशेष परिवर्तन देखने को मिलता है। परंतु यह अभियान सिर्फ प्राथमिक शिक्षा तक

ही सीमित है। जहाँ तक मध्याह्न भोजन की बात है तो यह सिर्फ कक्षा 1 से 5 तक के विद्यार्थियों तक ही सीमि है। जिसे निश्चित रूप से कम से कम कक्षा VII या VIII अर्थात् माध्यमिक कक्षा तक बढ़ाने की आवश्यकता है। मध्याह्न भोजन योजना को सरकार द्वारा प्रयासरत सामाजिक एवं सांस्कृतिक भेदभाव को समाप्त करने की दिशा में एक अभूतपूर्व योगदान माना जा सकता है। इसके तहत सभी वर्ग के बच्चे एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। जो सामाजिक समरसता की ओर एक कदम अवश्य माना जा सकता है। इसके अलावा दलित वर्ग के बच्चों को मुफ्त पुस्तकें एवं आर्थिक सहायता का भी प्रावधान है। मेरा शोध इस बात की पुष्टि करता है कि मध्याह्न भोजन के फलस्वरूप समाज के विभिन्न वर्गों के बीच व्याप्त सामाजिक असमानता एवं भेदभाव की प्रवृत्ति में कमी आयी है (चौधरी, 2008)। पुनः इस बात की भी पुष्टि हुई है कि माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में मध्याह्न भोजन से बच्चों के बीच असंतोष के साथ-साथ वैचारिक भेदभाव भी उत्पन्न हुआ है। इसका कारण यह है कि उच्च प्राथमिक विद्यालय में मूलतः कक्षा एक से सात या आठ तक की पढ़ाई होती है। परंतु मध्याह्न भोजन सिर्फ कक्षा एक से पांच के बच्चों के लिए ही उपलब्ध है। अतः कक्षा VI से VIII के बच्चों को एक ही विद्यालय में उपस्थित होते हुए भी मध्याह्न भोजन नहीं मिलता है, जो इन बच्चों में भेदभाव की भावना उत्पन्न करती है। इसके निवारण हेतु यह आवश्यकता है कि इन विद्यालयों में सभी कक्षा के बच्चों के लिए मध्याह्न भोजन की व्यवस्था होनी चाहिए जिसके माध्यम से बच्चों में शिक्षा के प्रति जागरूकता लाई जा सके।

बहरहाल जो भी हो शिक्षा के क्षेत्र में सारे प्रयास उंट के मुंह में जीरा के समान है क्योंकि भारत के अधिकांश दलित आबादी ऐसे दूर-दराज क्षेत्रों में निवास करती है जहाँ न सड़क बन पाई है और न ही बिजली की सुविधा उपलब्ध है। ऐसे में विकास की रोशनी पहुंचाने की जिम्मेदारी सरकार की है, जो कठीन प्रतीत होती है।

उपर वर्णित सभी तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि दलित वर्ग के लोग अभी-भी शैक्षिणिक रूप से काफी पिछड़े हैं जिसका प्रमुख कारण सामाजिक भेदभाव रहा है। इस क्षेत्र में काफी सरकारी प्रयास किये जा रहे हैं जो दलित शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति करने में असमर्थ हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि समाज के सभी-वर्गों को मिलकर एक अभियान के तहत काम करना होगा। साथ ही यहाँ पर विभिन्न गैर

सरकारी संस्थाओं की मद्द की भी आवश्यकता है जो दलितों के शैक्षिणक स्तर को बढ़ाने में योगदान कर सकती है। हमें निश्चित तौर पर समाज के सभी–समाजिक एवं राजनैतिक भेदभाव को भुलाकर एकजुटता से इस दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

चानना, करुणा (1993), *एसेसिंग हायर एजुकेशन : 'द डायलेमा ऑफ स्कूलिंग वुमन, मायनोरिटी, सैड्यूल कास्ट एंड ट्राइब्स इन कन्टमपरेरी इंडिया'* इन सुमा चिटनिस एंड फिलिप जी. अल्टबाख (सं.), हायर एजुकेशन रिफोर्म इन इंडिया।

चौधरी, सुजीत कुमार (2008), *रोल ऑफ नॉन–गोवरमेंटल ऑग्रेनाइजेशन इन एजुकेशन एंड फॉरमेशन ऑफ सोशल कैपिटल एमांग ट्राइबल्स : ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ टू मिलिजेज इन झारखंड पी.एच.डी. थिसिस* जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

इलैया, कांचा (2003), *वाई आइ एम नॉट हिन्दू,* समय पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

दुबे, एस.एन. और उषा माथुर (1972), *'वेलफेयर प्रोग्राम फार एसीज : कंटेंट एवं एडमिनिस्ट्रेशन इकॉनोमिक एवं पॉलिटिकल वीकली,* वाल्यूम VIII, नं. 4

झा एवं झींगरन (2002), *'द स्कूलिंग ऑफ दलित चिल्ड्रेन : ए पंडोरास बॉक्स इन एलिमेंटरी एजुकेशन फॉर द युअरेस्ट एंड द डिप्राइज्ड ग्रुप्स : द रियल चैलेंज ऑफ यूनिवर्सलाइजेशन :* सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च, नई दिल्ली

राम, एन. (1988) *'द मोबाइल शेड्यूल कास्ट्स : राइज ऑफ ए न्यू मिड्ल क्लास',* हर आनन्द पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 1, अप्रैल 2011

भारत में उच्च शिक्षा के मुद्दे, चुनौतियां और सुझाव

जे.डी. सिंह*

21वीं सदी को ज्ञान व तकनीकी की सदी कहा गया है। ज्ञान की इस सदी में यह बहुत अहम है कि हम अपनी शिक्षा प्रणाली और ज्ञान के ढांचे में योजनाबद्ध परिवर्तन लाएं। भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित हो जिससे नवीनता और उद्यमिता को प्रोत्साहन मिले। मगर ज्ञान की वैश्विक प्रतिस्पर्धा में जब हम भारत के भविष्य की तैयारियों पर नजर दौड़ाते हैं तो स्थिति ज्यादा उत्साहजनक नहीं दिखती। भारत को आजकल 21वीं सदी की विश्व शक्ति के रूप में देखा जाने लगा है, लेकिन इस रास्ते में कई बाधाएं भी हैं। सबसे बड़ी बाधा उच्च शिक्षा को लेकर है जिसे हमने पिछले कुछ समय से काफी नजरंदाज किया है। कुलपतियों के एक राष्ट्रीय सम्मेलन में मानव संसाधन विकास मंत्री ने उच्च शिक्षा को ऐसा बीमार बच्चा कहा था जिसे तुरंत इलाज की जरूरत है ताकि देश के युवा वर्ग को अच्छे अवसर दिए जा सकें। उन्होंने कुलपतियों से उच्च शिक्षा का नया रोड मैप तैयार करने का आग्रह किया और यह भी कहा था कि वे यह भी तय करें कि उच्च शिक्षा की सामग्री, उसका तरीका और उसके घटक क्या होंगे। भारत के पास अमेरिका और चीन के बाद दुनिया की तीसरे नंबर की सबसे बड़ी शिक्षा व्यवस्था है। भारत हर साल 25 लाख स्नातक तैयार करता है। लेकिन यह संख्या भारतीय युवा वर्ग का महज ग्यारह फीसदी है और ऐसे स्नातकों की गुणवत्ता भी अच्छी नहीं है। फिक्की उच्च शिक्षा शिखर सम्मेलन का शुभारंभ करते हुए माननीय श्री सिब्बल ने कहा कि देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बड़ी चुनौतियां हैं, क्योंकि साल 2020 तक उच्च शिक्षा में 30 प्रतिशत सकल नामांकन दर के लक्ष्य को हासिल करने के लिए काफी संख्या में विश्वविद्यालयों और कॉलेजों की स्थापना की जरूरत होगी। मानव संसाधान विकास मंत्री ने कहा कि साल 2020 तक 30 प्रतिशत लोगों को विश्वविद्यालय तक लाने के लिए अगले 10 वर्ष में देश में 800 विश्वविद्यालय और करीब 45 हजार कालेजों की जरूरत होगी। सरकार इसे अकेले नहीं कर सकती है और इस कार्य में बड़े

* प्रवक्ता, ग्रामोत्थान विद्यापीठ, शिक्षा महाविद्यालय (सी टी ई), संगरिया-335063 (राजस्थान)

निवेश की जरूरत होगी। अगले 10 वर्षो में हमें एक ऐसे ढांचे की जरूरत होगी जिससे देश की अर्थव्यवस्था की जरूरतों को पूरा करने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर निवेश का मार्ग प्रशस्त किया जा सके।

भारतीय उच्च शिक्षा का विकास

साठ वर्ष किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र के लिए आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। भारत भी अपनी आजादी के 64 वर्षों के पीछे झांक कर अपनी सफलता व विफलता पर दृष्टिपात कर रहा है। मनुष्य का सर्वांगीण विकास करने में उच्च शिक्षा महत्वपूर्ण है। सन् 1976 से पूर्व शिक्षा पूर्ण रूप से राज्यों का उत्तरदायित्व था। संविधान द्वारा 1976 में किए गए जिस संशोधन से शिक्षा को समवर्ती सूची में डाला गया, उसके दूरगामी परिणाम हुए। आधारभूत, वित्तीय एवं प्रशासनिक उपायों के द्वारा राज्यों एवं केन्द्र सरकार के बीच नई जिम्मेदारियों को बांटने की आवश्यकता महसूस की गई। जहां एक ओर शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों की भूमिका एवं उनके उत्तरदायित्व में कोई बड़ा बदलाव नहीं हुआ, वहीं केन्द्र सरकार ने शिक्षा के राष्ट्रीय एवं एकीकृत स्वरूप को सुदृढ़ करने का गुरुतर भार भी स्वीकार किया। इसके अंतर्गत सभी स्तरों पर शिक्षकों की योग्यता एवं स्तर को बनाए रखने एवं देश की शैक्षिक जरूरतों का आकलन एवं रखरखाव शामिल हैं। भारत में स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रीय प्रगति के लिए महत्वपूर्ण तत्व के रूप में शिक्षा की तरफ अधिक से अधिक ध्यान देना भारत सरकार और राज्यों के लिए एक प्रमुख मुद्दा रहा है। स्वतंत्रता पश्चात विभिन्न आयोगों एवं समितियों ने विशेषकर डा. एस. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित विश्वविद्यालय शिक्षा समिति (1948–49) और बी.ए. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग (1952–53) ने शिक्षा मे पुनर्निर्माण की समस्याओं पर विचार किया।

केंद्र सरकार ने अपनी अगुवाई में शैक्षिक नीतियों एवं कार्यक्रम बनाने और उनके क्रियान्वयन पर नजर रखने के कार्य को जारी रखा है। इन नीतियों में सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) तथा वह कार्यवाही योजना 1992 (पीओए) शामिल है, जिसे सन् 1992 में आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में अद्यतन किया गया। संशोधित नीति में एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तैयार करने का प्रावधान किया गया है जिसके अंतर्गत शिक्षा में एकरूपता लाने, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को जनांदोलन बनाने, सभी को शिक्षा सुलभ कराने, बालिका शिक्षा पर विशेष जोर देने, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विविध प्रकार

की जानकारी देने और अंतर अन्तर्विषयक अनुसंधान करने, राज्यों में नए मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना करने, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद को सुदृढ़ करने तथा खेलकूद, शारीरिक शिक्षा, योग को बढ़ावा देने एवं एक सक्षम मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाने के प्रयास शामिल हैं। इसके अलावा शिक्षा में अधिकाधिक लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु एक विकेंद्रीकृत प्रबंधन ढांचे का भी सुझाव दिया गया है। इन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में लगी एजेंसियों के लिए विभिन्न नीतिगत मानकों को तैयार करने हेतु एक विस्तृत रणनीति का भी पीओए में प्रावधान किया गया है।

एनपीई द्वारा निर्धारित राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली एक ऐसे राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचे पर आधारित है, जिसमें अन्य लचीले एवं क्षेत्र विशेष के लिए तैयार घटकों के साथ ही एक समान पाठ्यक्रम रखने का प्रावधान है। जहां एक ओर शिक्षा नीति लोगों के लिए अधिक अवसर उपलब्ध कराए जाने पर जोर देती है, वहीं वह उच्च एवं तकनीकी शिक्षा की वर्तमान प्रणाली को मजबूत बनाने का आह्वान भी करती है। शिक्षा नीति शिक्षा के क्षेत्र में कुल राष्ट्रीय आय का कम से कम 6 प्रतिशत धन लगाने पर भी जोर देती है। आर्थिक रूप से उभर कर आ रहे दुनिया के सात सबसे बड़े देशों में शिक्षा के मामले में भारत पिछड़ा हुआ है और इन देशों में उसका क्रम छठा है। स्त्री शिक्षा के मामले में भारत का स्थान 116 है।

भारत में 2010 के अन्त तक विश्वविद्यालयों एवं विश्वविद्यालय स्तर की संस्थाओं में 39 केंद्रीय विश्वविद्यालय, 255 राज्य विश्वविद्यालय, 59 निजी, 130 मानित (डीम्ड) विश्वविद्यालय, राज्य अधिनियम के अंतर्गत गठित 5 संस्थाएं तथा 13 राष्ट्रीय महत्त्व के संस्थान शामिल हैं। ये संस्थान 1800 महिला महाविद्यालयों सहित 17000 महाविद्यालयों के अतिरिक्त हैं। यूजीसी के अनुसार भारत में 2015 तक आधुनिक रिसर्च सुविधायुक्त 1500 और विश्वविद्यालयों की आवश्यकता होगी। वास्तव में शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापक है, उसके विविध आयाम हैं। दरअसल भारत में उच्चतर शिक्षा का मौजूदा स्तर बहुत उम्मीद जगाने वाला नहीं है। उच्च शिक्षा में साधारण दाखिला अनुपात और देश में शोध की गुणवत्ता व स्तर में आयी गिरावट हमारी शिक्षा प्रणाली में सुधार की प्रक्रिया और रफ्तार पर रोक लगा देती है। उच्च शिक्षा में भारत का दाखिला अनुपात महज 11 फीसदी है, जो विकसित देशों की तुलना में काफी कम है। हालांकि कोरिया (91 फीसदी सकल दाखिला अनुपात) अमरीका (83 फीसदी सकल दाखिला अनुपात)

और रुस (75 फीसदी सकल दाखिला अनुपात) जैसे देशों से भारत की तुलना करना थोड़ी ज्यादती होगी। मगर हम अपने निकट प्रतिद्वंदी चीन (20 फीसदी सकल दाखिला अनुपात) से सभी शिक्षा क्षेत्र में पिछड़ गए हैं। चीन ने उच्च शिक्षा से जुड़े लगभग हर मामले में हमसे बेहतर और तेजी से प्रगति की है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने अनेक नए शिक्षण संस्थानों, शोध संस्थानों तथा उच्च स्तर की प्रयोगशालाओं की स्थापना की। तत्कालीन राजनीतिक नेतृत्व की दूरदर्शिता तथा वैज्ञानिकों के साथ सम्मानजनक संवाद के कारण इन संस्थाओं ने नाम कमाया। इसमें विकसित नई कार्य संस्कृति के परिणामस्वरूप भारत की वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्र की क्षमताओं को सभी ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी सराहा। परमाणु ऊर्जा तथा अंतरिक्ष विज्ञान में भारत की श्रेष्ठता उन्हीं संस्थानों में किए गए कार्यों का परिणाम है। लेकिन भारत में आईआईटी, आईआईएम, एम्स और टाटा इस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च जैसे गिनती के संस्थानों में ही अच्छा शोध कार्य हो रहा है, और इन संस्थानों में भारत के कुल विद्यार्थियों के एक प्रतिशत से भी कम विद्यार्थी अध्ययनरत हैं। केंद्र सरकार के डिपार्टमेंट ऑफ इंडस्ट्रियल पालिसी एंड प्रमोशन के अनुसार अमरीकी विश्वविद्यालय जहां प्रतिवर्ष चार हजार से ज्यादा पेटेंट रजिस्टर्ड करवाते हैं, वहीं भारत में इसकी संख्या सौ के आस-पास ही है। विश्व में रिसर्च एंड डवलपमेंट पर होने वाला औसत खर्च कुल जीडीपी का 2.5 प्रतिशत है, जबकि भारत जैसी बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था में पिछले दो दशकों से रिसर्च पर होने वाला औसत खर्च भारत की कुल जीडीपी का 1 प्रतिशत से भी कम है।

चीन ने रिसर्च के क्षेत्र में हमसे आगे निकलने के साथ-साथ उच्चतर शिक्षा में दाखिला लेने वाले छात्रों की संख्या में हमें पीछे छोड़ दिया है। अगर हम थ्रमस रायटर के विभिन्न देशों द्वारा शोध के क्षेत्र में किए गए कामों के अध्ययन पर गौर करें तो भारत की स्थिति ज्यादा डांवाडोल नजर आती है। उनके अध्ययन के अनुसार शोध के क्षेत्र में 1988-93 के दौरान चीन की हिस्सेदारी 1.5 फीसदी थी। इसके बाद आंकड़ों के मुताबिक उसने एक बड़ी छलांग लगाकर अपनी हिस्सेदारी 1999-2008 में 6.2 फीसदी तक पहुंचा दी। वहीं भारत 1988-1993 में 2.5 फीसदी की हिस्सेदारी के साथ चीन से बेहतर स्थिति में था। मगर इसके बाद भारत की रफ्तार निराशाजनक रूप से धीमी हो गई। 1999-2008 में भारत ने अपनी हिस्सेदारी में मामूली इजाफा करके आंकड़ा 2.6 फीसदी

तक पहुंचाया। इससे देश में शोध की एक मजबूत पारिस्थितिकी प्रणाली का अभाव साफ झलकता है। हम समय की जरूरतों के लिहाज से अपनी शिक्षा प्रणाली में सुधार करने व शैक्षिक स्तर को वैश्विक स्तर का बनाने में असफल रहे हैं। आज हम देश में बहुत कम गुणवत्ता और शोध के लिए सुविधाएं उपलब्ध करवाने में सक्षम हैं। नतीजतन भारतीय मेधा विदेशों में मिल रहे अवसरों और सुविधाओं के चलते देश से पलायन कर रही है।

बीते वर्ष भारत आकर अमेरिका के राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा ने इस देश को दुनिया का एक शक्तिशाली राष्ट्र जरूर बताया हो, लेकिन उच्च शिक्षा के लिहाज से आकलन किया जाए तो भारत की मजबूत स्थिति कहीं नजर नहीं आती। हमेशा से कहा जाता रहा है कि जिस देश में शिक्षा की नींव मजबूत होगी, वह नित नए विकास के आयाम स्थापित करेगा। इस बात को अमेरिका के विकास से जोड़कर देखा जा सकता है। अमेरिका में आज दुनिया भर के छात्रों का उच्च शिक्षा के लिए रेला लगा हुआ है, उसमें भारतीय छात्रों की संख्या कहीं अधिक है। अमेरिका की एक रिपोर्ट बताती है कि वहां पढ़ने वाले भारतीय छात्रों की संख्या हर बरस बढ़ रही है। ऐसे में समझा जा सकता है कि भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बहुत कुछ किया जाना बाकी है। रिपोर्ट में दिलचस्प बात यह है कि अमेरिकी छात्रों का भारतीय शिक्षा से मोहभंग हो रहा है। यही कारण है कि भारत आकर अध्ययन करने अमेरिकी छात्रों की संख्या में बीते साल से करीब 15 फीसदी कमी हुई है। ऐसे में अंदाज लगाया जा सकता है कि भारतीय शिक्षा के क्या हालात हैं? अत: भारतीय शिक्षा व्यवस्था तथा नीति में काफी कुछ बदलाव की जरूरत है।

गत वर्ष उच्च शिक्षा क्षेत्र में विश्वविद्यालयों की गुणवत्ता को तय करती एक रिपोर्ट (लंदन टाइम्स हायर एजुकेशन-2009) सामने आई थी, जिसमें दुनिया के 100 विश्वविद्यालयों की सूची में भारत के एक भी विश्वविद्यालयों का नाम नहीं था जबकि पूर्व एशिया में कई देशों के विश्वविद्यालयों को पहले सौ में शामिल किया गया है। हांगकांग के तीन विश्वविद्यालय 24, 35 और 46 वें क्रम पर थे, सिंगापुर के दो 30 और 73वें स्थान पर, दक्षिण कोरिया के दो 47 और 69वें क्रम पर, ताइवान का एक 95 वें स्थान पर और चीन के सिंगवा और पीकिंग विश्वविद्यालय क्रमश: 49 और 52वें क्रम पर स्थित थे। और तो और 100 से 200 विश्वविद्यालयों की रैंकिंग सूची में भी भारत का

कोई भी विश्वविद्यालय स्थान नहीं बना पाया था। 200 से 300 विश्वविद्यालयों की सूची में में केवल 3 भारतीय संस्थान (भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर 237 पर, आईआईटी, मद्रास 284 पर और दिल्ली विश्वविद्यालय 291वें स्थान पर) रहे थे।

इसे विडंबना ही तो कहा जा सकता है कि कभी जिस देश की धरती पर शिक्षा के लिए विदेशों से पढ़ने वाले छात्र बड़ी संख्या में आते रहे हों, यदि उसी देश के विश्वविद्यालयों की इस तरह बदहाली होगी तो यहां उच्च शिक्षा में व्याप्त काली छाया का अंदाज लगाया जा सकता है। भारत में स्कूली शिक्षा की दहलीज करीब 22 करोड़ छात्र पार करते हैं, जिनमें महज 12 से 14 प्रतिशत छात्र ही उच्च शिक्षा ले पाते हैं। सबसे पहले तो इस दूरी को पाटने तथा कम किए जाने की जरूरत है। मानव संसाधन का बाहुल्य उत्पादकता में सबसे बड़ा सहायक होता है। भारत मानव संसाधन उपयोग की दृष्टि से दुनियां में 135 वें स्थान पर है। भारत जी डी पी का 6 प्रतिशत भी मानव संसाधन पर खर्च नहीं करता, जबकि जापान, दक्षिण कोरिया जैसे चमत्कारी आर्थिक प्रगति वाले देश शिक्षा पर 20 प्रतिशत से अधिक खर्च करते हैं। दुर्भाग्य से देश में जो उच्च शिक्षा का स्तर है वह सही नहीं है अगर इसे समय रहते नहीं बदला गया तो देश को इसके गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे। यूनेस्को की रिपोर्ट के अनुसार सभी विकास सूचकांकों में हम शिक्षा के क्षेत्र में अंतिम 15 देशों की सूची में आते हैं।

यह हमारी असफलता ही है कि हम उच्च गुणवत्ता वाले शिक्षा केंद्रों को आगे नहीं बढ़ा पा रहे हैं और साथ ही विदेशी संस्थाओं को भी हमने देश में आने से रोके रखा। अगर हम गुणवत्ता वाली शिक्षा नहीं दे पा रहे हैं, तब विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश ही जाएंगे। इससे देश का कितना नुकसान हो रहा है, कहना कठिन है। बुनियादी ढांचे और प्रबंधन की दृष्टि से भारतीय विश्वविद्यालय लगातार बढ़ती जनसंख्या (जो लगभग 15 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है) की जरूरतें पूरी करने में सक्षम नहीं हैं। परिणामस्वरूप, विदेशी विश्वविद्यालय इस जरूरत को पूरा करने के लिए भारत में अध्ययन केंद्र व संयुक्त उद्यम आदि खोलने के लिए प्रयासरत हैं। हाल ही में विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में आने की अनुमति देने वाला जो बिल आया है उससे गुणवत्तायुक्त उच्च शिक्षा प्राप्त करने में निश्चित रूप से आसानी होगी, परंतु इसके साथ ही विश्वविद्यालयों को और अधिक स्वायतत्ता देनी होगी। नेशनल कमिशन फार हायर एजुकेशन एंड रिसर्च (एनसीएचईआर) एक अच्छी पहल है, परंतु डर यही है कि यह भी

कहीं नौकरशाही संस्कृति में फँसकर न रह जाए, जो कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अब तक आड़े आती रही है। राधाकृष्णन कमीशन ने कहा था कि विश्वविद्यालय बौद्धिक जोखिम के घर हैं। इसका तात्पर्य यह है कि विश्वविद्यालयों को नया ज्ञान खोलना चाहिए। सत्य की खोज में, लोकोपयोगी क्षेत्रों में नई आवश्यकता और अन्वेषणों को लाना चाहिए। नित्यक्रम और समानता अपनी जगह है पर कुछ हद तक जोखिम लेने की क्षमता के बिना विश्वविद्यालय शिक्षा अधूरी है।

भारतीय उच्च शिक्षा के गंभीर मुद्दें

आजादी के बाद की स्थिति पर नजर डालें तो देखा जा सकता है कि भारत में केवल जनसंख्या में हर बरस बढ़ोतरी हो रही है, लेकिन शिक्षा की गुणात्मकता के हिसाब से विचार करें तो ऐसी किसी तरह की बढ़ोतरी नहीं हो सकी है। हर पांच साल में सरकार बनती है और सरकार नई हो या फिर पुरानी, सभी शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त कमियों को दूर करने की बात कहते हैं, लेकिन गौर करने वाली बात यह है कि शिक्षा का बजट बहुत कम होता है। इस तरह शिक्षा की बदहाली भला कैसे सुधर सकती है? भारत में जनसंख्या के लिहाज से वैसे तो विश्वविद्यालयों की संख्या कम ही नजर आएगी, किन्तु यह भी जरूरी नहीं, कि हर व्यक्ति की पहुंच तक, जिस तरह स्कूल शिक्षा की व्यवस्था की गई है, वैसी कोई व्यवस्था उच्च शिक्षा क्षेत्र में हो पाए, ऐसा सोचना हर स्थिति में मुश्किल ही लगता है। यदि उच्च शिक्षा को केवल बढ़ावा देने के लिए विश्वविद्यालयों की संख्या को बढ़ाया जाएगा तो उच्च शिक्षा के नाम पर केवल दुकानें ही खुलेंगी। वैसे भी छात्र संगठन का एक वर्ग, शिक्षा के बाजारीकरण के खिलाफ सड़क पर लड़ाई लड़ रहा है और इसे देश के लाखों छात्रों का समर्थन भी मिल रहा है।

अपने देश में विश्वविद्यालयों के क्षेत्र में हलचल है। कहीं विदेशी विश्वविद्यालयों को अनुमति देने पर चर्चा हो रही है, तो कहीं सैकड़ों नए विश्वविद्यालय खोलने की चर्चा गर्म है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय बड़े-बड़े परिवर्तनों के लिए सक्रिय दिख रहा है। आए दिन कोई न कोई नई घोषणा हो रही है। क्या विदेशी विश्वविद्यालयों को अनुमति मिलनी चाहिए? भारतीय तकनीकी संस्थान की रिव्यू कमेटी ने बताया है कि आईआईटी में पढ़ने वाले हर छात्र पर सरकार 40 हजार रुपए खर्च करती है। राजधानी की एक संस्था सेंटर फोर रिसर्च एण्ड एक्शन ने कहा है कि भारत के 150 विश्वविद्यालयों तथा 5000 महाविद्यालयों में न्यूनतम आधारभूत शैक्षणिक सुविधाओं का अभाव है। भारत

के अधिकांश विश्वविद्यालयों की स्थिति अत्यन्त चिन्तनीय है। यूजीसी से संबंधित नेक की गोपनीय रिपोर्ट के अनुसार करीब दो तिहाई (68 प्रतिशत) विश्वविद्यालयों और 90 प्रतिशत महाविद्यालयों में आधारभूत शैक्षणिक सुविधाओं की कमी पाई गई है। और इन संस्थानों में आधे से अधिक शिक्षक पूर्ण योग्यताधारी नहीं हैं। आईआईटी की स्थापना के बाद उनमें अध्ययन कर बहुत सारे मेधावी छात्र या तो बड़े वेतन के लिए प्राइवेट सेक्टर में चले जाते हैं या एडवांस रिसर्च के लिए अमेरिका जैसे देशों में चले जाते हैं। निसंदेह विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में बड़े परिवर्तनों की आवश्यकता है ताकि वहां से तैयार होकर निकलने वाले युवा सम्मानपूर्वक कौशल तथा ज्ञान के क्षेत्र में अपनी स्वीकार्यता पा सकें। भारत सरकार, राष्ट्रीय ज्ञान आयोग, सामान्य जन तथा प्रबुद्ध प्राध्यापक सभी मानते हैं कि उच्च शिक्षा में गुणवत्ता आधारित कौशलों की कमी एक बड़ी समस्या रही है।

उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने भारत में विदेशी विश्वविद्यालयों के लिए दरवाजे खोल दिए हैं। हर सिक्के के दो पहलुओं की तरह इस फैसले के भी दोनों पहलू समझ में आ रहे हैं। इसमें कोई शक नहीं कि इससे शिक्षा के क्षेत्र में नए विकल्प खुलेंगे, शिक्षा की गुणवत्ता शायद बेहतर होगी और हो सकता है, देशी–विदेशी विश्वविद्यालयों की इस प्रतिस्पर्द्धा का फायदा उन शिक्षकों को भी मिले जो सालों से कम वेतन प्राप्त कर रहे हैं। लेकिन ये तो तय है कि भारत में कैंपस स्थापित करने का सबसे बड़ा फायदा विदेशी विश्वविद्यालयों को ही मिलेगा। शिक्षा के क्षेत्र में भी भारत दुनिया के सबसे बड़े बाजारों में से है। भारत से हर साल तकरीबन 1.20 लाख छात्र उच्च शिक्षा के लिए विदेशों का रूख करते हैं, जिसमें से अधिकांश छात्रों की मंजिल अमेरिका होती है। मानव संसाधन मंत्रालय की एक रिपोर्ट के मुताबिक विदेशी संस्थानों में पढ़ने के लिए छात्र और अभिभावक सालाना 4 बिलियन ड्रलर (तकरीबन 180.2 अरब रुपये) खर्च करते हैं।

आज वैज्ञानिक अनुसंधानों पर पूंजी का कब्जा हो गया है, योग्यता की कोई पहचान नही है। जाहिर है कि आज उदारीकरण और निजीकरण के इस दौर में शिक्षा को भी शामिल कर लिया गया है। नतीजा यह हो रहा है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय में संसाधन जुटाने की भाग–दौड़ में शिक्षा का व्यवसायीकरण हो गया है। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों पर जोर देने के नाम पर हर विश्वविद्यालय अपने अपने कैम्पस में कम्प्यूटर, इंजीनियरिंग,

मार्केटिंग, जनसंचार और शिक्षाशास्त्र की नियमित और पत्राचार की दुकानें खोलकर दोनों हाथ से पैसा वसूलने की कोशिश तेज कर दी है। व्यावसायिकता की इस गलाकाट प्रतियोगिता में शिक्षा, शोध तथा विश्वविद्यालय के दरवाजे गरीब किन्तु योग्य मेंघावी छात्रों के लिए बंद हो गये हैं। ऐसी परिस्थिति में पूंजी और लाभ को प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक सोच को नई दिशा प्रदान करने हेतु हमें खुले दिमाग का इस्तेमाल करने की जरूरत है अन्यथा विज्ञान से संबंधित शोध का कोई औचित्य नही होगा। महानगरों में जितनी भीड़ कोचिंग सेंटरों में होती है उसकी तुलना में 10 प्रतिशत छात्र भी अपनी कक्षा में उपस्थित नहीं होते। छात्र प्राध्यापकों को ढूंढ़ते हैं कि वे कक्षा लेंगे या नहीं। करोड़ों रुपयों की सुसज्जित लाइब्रेरी खाली पड़ी रहती हैं। उच्च शिक्षा हासिल कर रहे 100 छात्रों में से मात्र 4 छात्र ही गांवों की 66 प्रतिशत आबादी से आते हैं। दलित बच्चों से तो और भी ज्यादा बेइंसाफी हो रही है। उच्च शिक्षा में दलित बच्चों की दाखिला दर सिर्फ 3.24 प्रतिशत है।

विश्वविद्यालय को शोध और बौद्धिक गतिविधियों का केंद्र होना चाहिए, लेकिन हमारे ज्यादातर विश्वविद्यालय शोध के लिए नहीं राजनीति के लिए खबरों में रहते हैं। बरसों तक हमने शिक्षा में निवेश नहीं किया और विश्वविद्यालयों को कामकाज देखे बिना लगातार उनकी मदद की। इसकी वजह से वे न तो अपने छात्रों को अच्छी शिक्षा देने की स्थिति में हैं और न ही महत्वपूर्ण शोध करने की। देश में बढ़ती हुई बेरोजगारी पर सरकार की चिंता दिखाई नहीं पड़ती। 1990 के दशक में मनमोहक उदारीकरण और निजीकरण की केन्द्रीय सरकार की नीति ने शिक्षा पर प्रभाव डाला है। भूमण्डलीकरण के चक्कर में देश में सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार के अवसर कम करने का दबाव है तो निजी क्षेत्र में कड़ी प्रतियोगिता है।

हालिया प्रस्तावित विदेशी शैक्षणिक संस्थागत नियामक विधेयक 2010 का बचाव करते हुए पिछले हफ्ते एक टेलीविजन चैनल पर करण थापर को साक्षात्कार देते वक्त सिब्बल ने अपने शिक्षा सुधारों को 1990 के दशक के शुरुआत के आर्थिक सुधारों से जोड़ा। उन्होंने कहा कि प्रस्तावित विदेशी शिक्षा बिल का विरोध उन्हीं खेमों की तरफ से हो रहा है जो 1991 में आर्थिक उदारीकरण की आलोचना में जुटे थे। आईआईटी और आईआईएम जैसे संस्थानों ने पूरी दुनिया में भारतीय उच्च शिक्षा के झंडे गाड़े हैं, लेकिन

जब पारंपरिक उच्च शिक्षा संस्थानों की बात होती है तो भारत विश्व मापदंडों पर कहां दिखता है? क्या भारतीय विश्वविद्यालयों में एम ए, बी ए, एम फिल, पी–एच डी को 21वीं सदी की नई उंचाईयों तक ले जाने की ताकत है? शिक्षा सुधार एक पीढ़ी के भविष्य से जुड़ा हुआ है। किसी भी नए कदम की साख देश के मध्यम वर्ग के बीच होना जरूरी है। विदेशी शिक्षा बिल के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि यह कोई इतना बड़ा सुधार का कदम नहीं है जितना बताया जा रहा है। जिस प्रकार आर्थिक सुधारों का सरोकार नौकरियों और आय से है, वैसे ही शिक्षा का संबंध रुतबे और अवसरों से है। व्यापार उदारीकरण भले ही कारोबारियों के भविष्य से जुड़ा हो मगर मध्यम वर्ग के लिए इसके मायने रोजगार के नए स्रोतों और उपभोग के नए अवसरों से है। यही वजह है कि कोई भी शिक्षा सुधार कार्यक्रम समग्र विकास की रणनीति के साथ तैयार किया जाना आवश्यक है।

पिछले दो दशकों तक 7 फीसदी से अधिक की विकास दर ने संपन्न कारोबारी वर्ग, समृद्ध प्रोफेशनल वर्ग और नए अमीरों की फौज खड़ी कर दी है जो अपने बच्चों को विदेश भेजकर पढ़ाने का खर्चा उठा सकते हैं। इनमें से कुछ तो विदेश पढ़ने इसलिए जाते हैं क्योंकि वे वहां जाकर पढ़ने की चाहत रखते हैं जबकि कुछ ऐसे भी होते हैं जिनके पास दूसरा कोई विकल्प नहीं होता है। उच्च विद्यालयों में अच्छे अंक पाने के बाद भी इन्हें सीट की कमी की वजह से देश के अच्छे कालेजों में दाखिला नहीं मिल पाता है।

आधुनिक विकास की बिडंबनाओं और शिक्षा की चुनौतियों पर गंभीरता से विचार करने वाले लगभग सभी लोग मानते हैं कि आज की शिक्षा सार्वजनिक कल्याण की चिंता कम करती है, निजी उन्नति की लालसा और प्रेरणा अधिक देती है। गाँव के लोगों की सेवा, उनका उत्थान जैसे आदर्श तुरंत दम तोड़ देते हैं। किंतु समस्या यहीं तक सीमित नहीं है। यह शिक्षा लोगों में वैयक्तिक रूप से सुखी होने की चाह तो बढ़ाती है, किंतु उसका कोई सुसंगत मार्ग दिखाने में नितांत विफल रहती है। एक बात जो सबसे ज्यादा जरूरी है, वह मूल्य आधारित शिक्षा की है। आजकल औपचारिक शिक्षा तो छात्रों को मिल जाती है पर नैतिक और सामाजिक शिक्षा नहीं मिल पा रही है। चाहे कोई किसी भी विषय का विद्यार्थी हो, उसे यह मालूम होना चाहिए कि हमारी समस्या क्या है? वो गरीबी की हो, वह लिंग आधारित विभेद की हो, वो जाति की हो, शोषण और बहिष्कार की हो, उसे इनका एहसास होना चाहिए। आरक्षण और सांप्रदायिकता जैसे मुद्दों को

वैज्ञानिक तरीके से देखने की जरूरत होती है पर वह नहीं हो पा रहा है।

देश के विश्वविद्यालयों से समाज में ऐसी डिग्रियाँ जा रही हैं, जिसका समाज और जीवन की हकीकत से कोई लेना-देना नहीं है इसीलिए 80 प्रतिशत डिग्रीधारी छात्र आज बेरोजगार हैं। दुनिया के दूसरे देशों के मुकाबले हमारे पास तो पी-एच डी धारकों तक की बहुत बड़ी कमी है। अकेले अमेरिका पूरे विश्व के 32 प्रतिशत शोधपत्र प्रकाशित करता है। इस मामले में भारत का हिस्सा सिर्फ 2.5 प्रतिशत है, और उनकी मौलिकता भी संदेह के घेरे में है। किंतु क्या इसका कोई सार्थक, कारगर और स्वीकार्य विकल्प है? इसका उत्तर अनिश्चितता से ग्रस्त है।

भारतीय उच्च शिक्षा की वर्तमान चुनौतियां

अभी हाल ही में अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने भारतीय मेधा की तारीफ की थी। फिर कुछ लोग ऐसी प्रतिक्रियाएं भी देते देखे गये कि ओबामा ने भारतीय इंटेलिजेंसी सर्टिफिकेट पर जुबानी मुहर लगा कर बरसों की हमारी तपस्या के वांछित अनुदान की बकाया किश्त रिलीज कर दी हो। मगर इस आत्ममुग्धता से हमारी शिक्षा प्रणाली के समक्ष मुंह बाये खड़ी समस्याओं का हल नहीं निकलेगा। हमें ध्यान देना होगा कि हमारी शिक्षा प्रणाली की ढांचागत खामियों के चलते भारतीय युवाओं की रुचि उच्च शिक्षा व शोध में कम हो रही है। दरअसल उच्च शिक्षा प्रणाली की बुनियादी खामियों के कारण हम शिक्षित होने और बाजार के अनुरूप कुशल होने के अंतर को नहीं पाट पा रहे हैं। इसका मतलब है कि हमारी शिक्षा प्रणाली 25 वर्ष से कम उम्र के 55 करोड़ नवयुवकों की उम्मीदों पर खरी नहीं उतरी है। यदि थोड़ी बारीकी से देखें तो पाएँगे कि विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने के उपरांत भी भारी मात्रा में विद्यार्थी बेरोजगार बने रहते हैं। कुछ को छोड़ दें तो ज्यादातर विषयों का जीवन की वास्तविकताओं से लगाव कम ही होता है।

आज की गलाकाट प्रतिस्पर्धा के इस दौर में उच्च शिक्षा का उद्देश्य शिक्षित करने के साथ-साथ कुशल व काम के लिए तैयार मानव शक्ति का पुल बनाना है। मगर मौजूदा शिक्षा प्रणाली इसमें चूक गयी है। नतीजतन रोजगार खोजने वालों के स्तर और बाजार के कौशल की जरुरतों में कोई मेल नहीं बैठता। इस कमी के चलते हम अपने शिक्षित युवाओं की क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग नहीं पा रहे हैं। इसके साथ-साथ शिक्षा का लगातार महंगा होता जाना भी इसे आम तबके की पहुंच से दूर कर रहा है। विदेशी धरती

पर नस्लभेद जैसे जख्म लेने के बाद भी विदेशी शिक्षा से छात्रों की दिलचस्पी में कमी नहीं आ रही है। संस्था प्रमुखों की नियुक्तियां ऐसा बिंदु हैं, जहां सरकार का दखल इन उच्च शैक्षणिक संस्थाओं के कामकाज को प्रभावित करता रहा है, जो वर्षो से उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है। हमारे कृषि विश्वविद्यालयों में कीमती फर्नीचर, पंखे, सुसज्जित प्रयोगशाला सब सफेद हाथी के समान हैं। उनका किसानों के साथ कोई भावनात्मक या टेक्नीकल संबंध नहीं है। विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक विदेश यात्रा में रूचि रखते हैं उन्हें समाज, आम नागरिक, किसान, छोटे उद्योगपतियों के आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी पहलुओं से कोई सरोकार नहीं है। कुल मिलाकर हमारे स्वतंत्र भारत में उच्च शिक्षा अपना महत्व एवं स्थान खो रही है। आने वाला समय ही बतायेगा कि इस स्थिति से उच्च शिक्षा को कैसे बचाया जाये। युवा वर्ग में बेरोजगारी का मकड़जाल उच्च शिक्षा की स्थिति को स्पष्ट करता है। विश्वविद्यालय व उच्च शिक्षण संस्थानों की गरिमा और सार्थकता इसी में है कि उनका संचालन व शिक्षण स्वायत्त रूप से हो। इसमें दखल एक तरह से राजनीतिक दखल की श्रेणी में आता है और जब राजनीति हावी होती है, तब कहीं न कहीं शिक्षा की गुणवत्ता से समझौता करने की स्थिति उभरती है।

इतिहास बताता है कि ईसा पूर्व शिक्षा, आर्थिक समृद्धि, वैज्ञानिक सोच आदि में भारत का सर्वोच्च स्थान था। परन्तु दुर्भाग्य है कि आजादी के बाद भारत अपनी तमाम वैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि में पिछड़ता जा रहा है। भारतीयों ने वैज्ञानिक सोच का लाभ लेने में कंजूसी की है। वर्तमान में विज्ञान का लाभ व्यक्तिगत उपलब्धियों तक सीमित हैं। नतीजा यह हुआ कि हम दुनिया के साथ कदम मिलाकर चलने में नाकामयाब हुए। दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों में चीन, हांगकांग, जापान, कोरिया और सिंगापुर आदि देशों ने भारत की तुलना में तेजी से आर्थिक विकास करने में सक्षम रहे, इसका प्रमुख कारण है कि इन देशों ने शिक्षा में पूंजी का विनियोग किया है जिससे औद्योगीकरण की प्रक्रिया में कुशल श्रम के प्रवेश का मार्ग सरल बन गया है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था न तो सोचने का तरीका बताती है और न ही सभी के लिए सहज है। भारत में उच्च शिक्षा प्रणाली की मौजूदा हालत चिंताजनक है और हम इसमें क्रांतिकारी परिवर्तन लाने से कतरा रहे हैं। मगर भारत को वैश्विक ज्ञान की अर्थव्यवस्था में तब्दील करने के लिए हमें अपनी शिक्षा प्रणाली में द्रुतगति से सुधार करने की जरूरत

है। ज्वलंत सवाल यह भी है कि शिक्षा व्यवस्था का पुनर्निर्माण तथा पुनर्निर्धारण समाज के ज्ञान के लिए कैसे हो? क्या हमारे विश्वविद्यालय विश्व स्तर की चुनौतियों का सामना कर सकते हैं? इस पर राष्ट्रव्यापी चर्चा होने की आवश्यकता है। 1953 में आचार्य विनोबा भावे ने कहा था कि कॉलेज में मुझे बहुत कुछ पढ़ाया गया, मगर ज्ञान नहीं दिया गया। आज इस स्थिति को बदलना है। युवाओं को न केवल ज्ञान देना है, परंतु यह भी सिखाना है कि नए ज्ञान का सृजन कैसे हो? इसके लिए एक सशक्त संस्थागत संस्कृति की आवश्यकता है, जिसमें अध्ययन-अध्यापन में किसी भी प्रकार की कमी को स्वीकार न किया जाए।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हेतु सुझाव

शिक्षा की उपलब्धता बढ़ाना एक चुनौती है और शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाना इससे भी बड़ी चुनौती है। पिछले तीन-चार वर्षो में अनेक नई संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, स्कूलों, शोध संस्थानों की स्थापना की घोषणाएं हुई हैं। सामान्यत: इनका स्वागत होना चाहिए, परंतु जब इन्हें प्रारंभ करते समय मूलभूत आवश्यकताओं तथा संसाधनों का प्रावधान न किया जा रहा हो तब यह समाज तथा उसके प्रबुद्ध वर्ग के लिए चिंता का विषय ही बन सकते हैं। आज भारत की युवा पीढ़ी के लिए नीतिगत तथा क्रियान्वयन, दोनों स्तर पर ठोस प्रयासों की बेहद आवश्यकता है। इसके लिए निम्नांकित प्रयास कारगर साबित हो सकते हैं:

- छात्रों की अधिकांशत: शिक्षा प्रोजेक्ट आधारित होनी चाहिए, और आम जीवन की किसी समस्या से या किसी उद्योग की तकनीकी समस्या से इन प्रोजेक्टों का वास्तविक सम्बन्ध हो। उनमे भी समयानुसार लगातार परिवर्तन होता रहना चाहिए। छात्रों को केवल विषय का अध्ययन न करवाकर उनमें नवीन सृजन की सोच विकसित करनी चाहिए।
- शिक्षा रोजगारपरक होने पर ही युवा शक्ति को आकर्षित करेगी। रोजगार का अर्थ सरकारी नौकरी मानने का संकल्प पूरी तरह छोड़ना होगा। रोजगार शिक्षा का उद्देश्य या लक्ष्य नहीं हो सकता, सम्पूर्ण शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा ही हो सकता है।
- जो छात्र अच्छे संस्थानों में दाखिला नहीं मिल पाने की वजह से विदेश जाकर

पढ़ाई करते हैं, उन्हें अगर देश में ही अच्छा मौका मिले तो वे इसे ही तरजीह देंगे। देश के लगभग पांच सौ विश्वविद्यालयों और बाईस हजार कालेजों की गुणवत्ता सुधारने को प्राथमिकता मिलना चाहिए। यदि इस एजेंडा को पूरा किए बगैर विदेशी विश्वविद्यालय लाए जाते हैं, तो वे मनमानी ढंग से फीस ऐंठेंगे और मुनाफा कमाएंगे। इस स्थिति में विश्वस्तरीय मानकों को ध्यान में रखकर स्वीकृति देनी चाहिए।

- भारत में केवल आठ हजार विद्यार्थी बाहर से आते हैं, जिनमें अधिकांश भारतीय मूल के होते हैं। जबकि भारत से शिक्षा में स्थानों की कमी के कारण लगभग 80 हजार युवा प्रति वर्ष विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने जाते हैं। इस कम संख्या का एक कारण अधिकांश संस्थानों की गुणवत्ता में कमी होना भी है। भारत को उच्च शिक्षा में न केवल स्थान बढ़ाने हैं, बल्कि उसकी गुणवत्ता भी बढ़ानी चाहिए। उच्च शिक्षा समाज के अधिकतर लोगों के पहुँच के अन्दर होनी चाहिए।
- आजकल अच्छे अध्यापकों की कमी बहुत महसूस हो रही है। सरकारी डिग्री पाए साक्षर, जिन्हें कोई और नौकरी नहीं मिलती है, वह उच्च शैक्षिक संस्थानों में अध्यापन कार्य करने लगते हैं। दूसरा पहलू भी देखा जाना चाहिए कि इस भौतिकवाद में शिक्षकों को उनसे अपने दायित्व को बढ़िया ढंग से निभाने की ही उम्मीद की जानी चाहिए और इस मामले में धन की भी कमी नहीं आड़े आनी देनी चाहिए। देश में अभी अनेक विश्व स्तरीय उच्च शिक्षा संस्थानों की आवश्यकता है। इस दिशा में किया गया काम वर्तमान स्थिति के सुधार में मददगार साबित हो सकता हैं।
- पी-एच डी आदि भी अधिकांशत: खानापूर्ति का ही दूसरा नाम बनकर रह गया है। कोई भी शोधकर्ता या गाइड कोई चुनौतीपूर्ण विषय को हाथ में लेकर उसका मौलिक समाधान प्रस्तुत करने का कष्ट उठाने के लिये आवश्यक आत्मविश्वास नहीं जुटाना चाहता। अत: मौलिक व चुनौतीपूर्ण विषय को लेकर शोध कार्य होना चाहिए जो आम आदमी की जरूरतों को पूरा कर सके।
- परीक्षा व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। मौलिक सोचने-विचारने और तर्क-वितर्क करने वाला औसत अंक ही जुटा पाता है। अत: रटने

की प्रवत्ति के स्थान पर मौलिक सोच, परिष्कार को महत्व दिया जाना चाहिए। इसके साथ ही हमें यह भी समझना चाहिए कि प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था संपूर्ण शैक्षिक व्यवस्था की नींव है। अत: उस पर उच्च शिक्षा का महल खड़ा करने के लिए पूरे नेक मन से प्रयास करने होंगे, तभी उस महल में उच्च शिक्षा के सुंदर व भव्य अंगूरे लग पाएंगे।

- विदेशी निवेश और ब्रांड देश में बेहतर शिक्षा संस्थानों में सीट की कमी को दूर कर सकते हैं। और इस कारण से इनका स्वागत किया जाना चाहिए। यह सच्चाई कि भारतीय छात्रों द्वारा यहां फीस स्थानीय मुद्रा में चुकाए जाने से विदेशी मुद्रा प्रवाह कम होगा एक महत्वपूर्ण तथ्य है। व्यवस्था की दृष्टि से विदेशी विश्वविद्यालयों पर अगर हमारा नियंत्रण रह सके, तो उन्हें मंजूरी देने में कोई हानि नहीं है। अपने देश में शिक्षा का प्रचार-प्रसार आवश्यक है। विदेशी विश्वविद्यालय आएंगे, तो अपनी ओर से वे भी शिक्षा प्रसार के प्रयास करेंगे। हां, अगर उन पर नियंत्रण नहीं रहेगा, तो हमें मुश्किल आ सकती है। इस तरह भारत विदेशी मुद्रा बचा पाएगा, परिवारों को अपने बच्चों को अपने पास रखने का मौका मिलेगा और छात्रों को आकर्षित करने के लिए विदेशी शिक्षा संस्थानों को भारतीय शिक्षा संस्थानों को टक्कर देनी होगी। मगर भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली को इससे बड़े सुधार और वित्तीय सहयोग की जरूरत है। ऐसे समय में सरकार को रोजगारपरक शिक्षा के क्षेत्र में नई नीति बनाने की जरूरत है। उच्च शिक्षा में बरसों से जो कमियां बरकरार हैं, उसे सरकार को दूर करने की पहल करनी चाहिए, नहीं तो विकासशील भारत को विकास के जो आयाम तय करना है, वह पूरा नहीं हो पाएगा।
- विश्वविद्यालय परिसर में शैक्षिक संस्कृति का विकास करना चाहिए, जो शिक्षकों तथा विद्यार्थियों को सर्वांगीण फल दे सके। ज्ञान के नवीनतम क्षेत्रों के प्रति उत्सुकता ही किसी विश्वविद्यालय को प्रासंगिक बनाए रख सकती है। विचारों की नवीनता, पारस्परिकता, कर्मठता, प्रयोगशीलता, दृष्टिगत खुलापन और आत्मीयता से उच्च शिक्षा ही नहीं, जीवन की चुनौतियों का भी सामना किया जा सकता है। बेहतर हो कि परंपरा और नयी दृष्टि का सम्मिलन रखा जाए। आधुनिकता की दौड़ में शाश्वत विचारों व साहित्य से वंचित होना उचित नहीं, उसी तरह धुर

पारंपरिकता से समकाल को पहचाना नहीं जा सकता। परंपरा का औचित्यपूर्ण अवगाहन तथा समकाल की चेतना दोनों का संतुलन उच्च शिक्षा व विश्वविद्यालय को नया संबल दे सकते हैं। इस तरह विश्वविद्यालयों में विचारों की गहमा–गहमी व पारम्परिक संवाद बनाने पर बल देना चाहिए।

- जब नियंत्रण की बात हो तो इसमें शुल्क की चिंता शामिल है। शुल्क का निर्धारण हमारी आर्थिक स्थिति को देखकर लें। हालांकि जहां तक अभी तकनीकी शिक्षा का प्रश्न है, तो भारत में कई संस्थान हैं, जो बहुत ज्यादा शुल्क वसूल रहे हैं। जो गरीब तबका है, वह तो अभी भी अच्छी शिक्षा या उच्च शिक्षा के खर्चे को नहीं उठा पा रहा है।

- भारत में उपनिवेशवादी शासन ने जिन शिक्षा व्यवस्थाओं को जन्म दिया है, वे राष्ट्रीय हित में नहीं हैं। इस व्यवस्था ने बहुत सी विसंगतियां पैदा कर दी हैं पर हमारी सरकारों ने बाबू और गुलाम पैदा करने को स्वतंत्रतावादी व्यक्तियों से अधिक महत्त्व दिया है। अनुशासन के लिए आत्म–जागृति, समाज व देश के प्रति सही निष्ठा, कर्त्तव्यों के प्रति चेतना जरूरी तत्व हैं। इनके बिना शिक्षा सार्थक नहीं हो सकती।

- राजनीतिक दखल, जातिवाद, ट्रेड यूनियनवाद और कई दूसरी खामियों के जमावड़े के कारण उच्च शिक्षा प्रभावित हो रही है। कोई विदेशी निवेशक और संस्थान मौजूदा हालात को बदल नहीं सकता है। राष्ट्रीय सुरक्षा की तरह ही शिक्षा के क्षेत्र में भी भारत को दूसरों से पहले खुद की मदद करनी होगी। सरकार उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न संस्थाओं को बुद्धिजीवियों, शिक्षाविदों व योग्य प्रशासकों के नियंत्रण व मार्गदर्शन में विकसित होने दे ताकि सरकार व शिक्षण संस्थाओं के बीच सकारात्मक संबंध विकसित हों। यह जरूर ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षण संस्थान सामाजिक संरचना में अपनी सार्थक भूमिका निभा सकें।

- उच्च शिक्षा में ऐसी गुंजाइश होनी चाहिए कि व्यक्ति का समाजिक व सांस्कृतिक जुड़ाव बेहद सक्रिय हो। वह सक्रिय सर्जनशीलता का मन लिए हो जिसमें आम आदमी भी बसा हो। मानविकी के विषयों में संवेदन, तर्क शक्ति, प्रेक्षण, विवेचन की क्षमता बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए। इनके बगैर ये महज सैद्धांतिक या

वायवीय बन जाएँगे। साहित्य से रससृष्टि, संवेदन तथा दृष्टिबोध संभव न हुआ तो उसका क्या अर्थ है। समाज को भी चाहिए कि ऐसे विषयों के प्रति उदासीनता न बरतें तथा कॅरियर के साथ-साथ इन्हें भी समान महत्व दें, ताकि समाज व व्यक्ति के संबंध और सुदृढ़ हों और व्यक्ति का मानसिक विकास संभव हो।

- यदि हम थोड़ी बारीकी से देखें तो पाएंगे कि विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने के उपरांत भी भारी मात्रा में विद्यार्थी बेरोजगार बने रहते हैं। कुछ को छोड़ दें तो ज्यादातर विषयों का जीवन की वास्तविकताओं से लगाव कम ही होता है। इस तरह यह शिक्षा ज्यादातर एक ट्रेजडी ही रचती है। इसमें दो स्तरों पर बदलाव की जरूरत है। एक - एकेडमिक्स में नवाचार (Innovation), दूसरा-विषयों को जीवन से जोड़कर आजीविका पक्ष की मजबूती। शिक्षा के पाठ्यक्रम को समकाल का सहचर होना चाहिए तथा उसमें हमारे आंतरिक सौंदर्य को प्रतिबिम्बित करने की क्षमता भी हो। पाठ्यक्रमों में समयानुकूल बदलाव के लिए प्रतिभाशाली विद्वानों, चिंतकों तथा विषय पर गहरी पकड़ रखने वालों को जोड़े रखना चाहिए। यह प्रयत्न होना चाहिए कि हर विषय का आजीविका पक्ष भी तलाशा जाए। ऐसा भी संभव है कि विषय का अध्ययन करते हुए विद्यार्थी स्वयं समर्थ हो जाएँ। विषय के अनुषंगी विषय भी सहकारी रूप में पढ़ाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए कुछ लोगों का मत है कि साहित्य के साथ अनुवाद व पत्रकारिता भी जोड़ दिए जाएं तथा तुलनात्मक अध्ययन संभव हो तो उसे आजीविका का संबल बनाया जा सकता है। इस तरह समाजशास्त्र की एप्लाइड स्टडी फलदायी सिद्ध हो सकती है। इतिहास का समकालीन अध्ययन बेहद रोचक तथा रोजगारपरक हो सकता है। संस्कृति को सूचना प्रौद्योगिकी तथा मेडिकल से जोड़कर स्थानीय सर्वे के आधार पर नयी संभावनाएं तलाशी जा सकती हैं। उपर्युक्त बातों को कहीं सैद्धांतिक व एकेडमिक अध्ययन की शिथिलता से न जोड़ा जाए। प्रयोजन सिर्फ यह है कि नए क्षितिज खोज कर संभावनाएं विकसित की जाएँ।
- विश्वविद्यालयों का प्रबंधन अकादमिक तथा प्रशासनिक पक्षों का मिला-जुला रूप है। सरकारी तंत्र के अलावा यदि विश्वविद्यालय स्वयं में भी आत्मनिर्भरता प्राप्त कर लें, तो यह बड़ी उपलब्धि होगी। लेकिन ध्यान रखिए, उच्च शिक्षा को एलीट क्लास का विषय नहीं बनाया जा सकता। यह सामान्य जन के विरुद्ध है।

इसका उलट यह भी कि सरकार पर अतिनिर्भरता औचित्यपूर्ण नहीं। इसलिए कोई बीच का रास्ता निकालना चाहिए। कुलपति का अकादमिक क्षमता से संपन्न होना शिक्षा के हित में है। विश्वविद्यालयों के बोझिल, दमघोंटू वातावरण का निस्तारण कर उसे सुरुचिपूर्ण, आह्लादक तथा विचारप्रधान बनाना चाहिए। शिक्षकों व विद्यार्थियों की स्वायत्तता को बहुत सम्मान देना चाहिए, क्योंकि इसके बाद ही बड़ा कार्य संभव है। वे इस बात के लिए प्रेरित किए जा सकते हैं कि मर्यादित रहना भी एक कला है। परिसर में बढ़ती हिंसा व दुर्व्यवहार के पीछे आत्मीय संबंधों के अभाव का मनोविज्ञान है। यदि यहां पर एक पारिवारिक वातावरण विकसित किया जाये तो अनेक अप्रिय प्रसंग घटित ही नही होंगे। प्रतिभाशाली व तेजस्वी अध्यापक विद्यार्थियों को दृष्टिसंपन्न बना सकते हैं। इसलिए अध्यापकों की गुणवत्ता शिक्षा के हित में है। विजनरी अध्यापकों को अवश्य स्थान देना चाहिए।

- देश में पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप आधारित शिक्षा माडल को ही आगे लाया जाना चाहिए और इसे उद्योग का दर्जा देना चाहिए। इसके अलावा रिसर्च के क्षेत्र में भी काफी काम किया जाना चाहिए। व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र की ओर भी ध्यान देना जरूरी है। अगर इन बातों पर ध्यान दिया जाता है, तब उच्च शिक्षा का क्षेत्र काफी तेजी से आगे बढ़ेगा।

- जनता में उस बौद्धिक चेतना और विश्वास का होना जरूरी है जिससे वह उच्च शिक्षा का पूरा लाभ उठा सकें। उच्च शिक्षा भी स्तरीय होनी चाहिए ताकि लाभकारी हो। बाजार तो प्रतिस्पर्धा का स्थान है, खाली आदेशों की बात करना जनता को भुलावा देता है। हर अच्छी शिक्षा में आदर्श समाहित होते हैं, हर स्तरीय शिक्षा इसी तरह की होती है पर जनता की नैया को पार लगाने और प्रतिस्पर्धा में टिकने की क्षमता का होना बहुत जरूरी है। शिक्षा का स्तर ऊंचा उठाने का हर प्रयत्न होना चाहिए। शिक्षा ज्ञान की पर्याय बन जाय, ऐसी धारणा बननी चाहिए।

- वैकल्पिक शिक्षा के प्रयोग में ऐसे लोगों के सहयोग की अपेक्षा की जाती है जिन्हें भारतीय परंपरा की चेतना, आधुनिकता की समझ और सत्यनिष्ठा हो। इन तीन मूलाधारों पर वैकल्पिक शिक्षा के उपाय में देश भर से सहयोगी जुटाने के प्रयत्न

सफल हो सकते हैं। हमने अपने शब्दों की अनमोल अवधारणाओं को त्याग कर उसमें पश्चिमी शब्दों के अर्थ डाल दिए हैं। यह एक भयंकर दुर्घटना हुई है, जिससे प्राय: हम समस्या ही नहीं समझ पाते। स्थानीय स्तर पर छोटे-छोटे प्रयोगों से ही कुछ परिणाम आने की उम्मीद की जा सकती है।

- शिक्षा में गुणवत्ता के लिए उच्च शिक्षा के क्षेत्र में दो आयामी लेखा परीक्षा- शैक्षणिक और प्रशासनिक लेखा परीक्षा की जरूरत है। इससे धन के आवंटन में और उच्च शिक्षा संस्थानों के मूल्यांकन के लिए सभी स्तरों पर एक दिशा मिलेगी। तभी विश्वविद्यालय के ग्राहकों, छात्रों, सहकर्मियों, वित्तपोषण करने वाली एजेंसियों, नियोक्ताओं, सरकार और समाज को पूरी तरह संतुष्टि मिलेगी। प्रशासनिक लेखा परीक्षा को भारत में शिक्षा के स्तर में गिरावट का पता लगाने के लिए प्रशासनिक अव्यवस्था, नियुक्तियों और प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप, धन की कमी, वित्तीय भ्रष्टाचार, छात्रों और शिक्षकों की निष्क्रियता आदि की पहचान करनी चाहिए।

- प्रत्येक विद्यार्थी चाहे किसी भी विषय का हो, उसे यह मालूम होना चाहिए कि हमारे समाज की मूलभूत समस्याएं, गरीबी, लिंग आधारित विभेद, जाति विभेद, शोषण और बहिष्कार जैसी समस्याओं का उन्हें एहसास होना चाहिए। अगर सामाजिक व्यवस्था की इन सच्चाइयों का अहसास हम उन्हें करा देते हैं तो इन समस्याओं की ओर देखने का या उन्हें नजरअंदाज करने के नजरिए में बदलाव आएगा। हम देखते हैं कि आज भी समाज के शिक्षित वर्ग में समाज और देश की समस्याओं को समझने की सकारात्मक दृष्टि का अभाव है। शिक्षा के समान अवसर, आर्थिक सुरक्षा, मूल्य आधारित शिक्षा, सामाजिक, सांप्रदायिक और लिंग विभेद जैसी समस्याओं से अवगत कराने वाली शिक्षा प्रणाली को लागू करने से देश में शिक्षा के स्तर में सुधार संभव प्रतीत होता है।

- यह भी समझना चाहिए कि ज्ञान का चरित्र बदल रहा है, उसकी व्यापकता बढ़ रही है। नई परिस्थितियों में स्वदेशी और स्थानीय ज्ञान का आयातित ज्ञान से समन्वय और संतुलन होना जरूरी है। इस समन्वय से ही ज्ञान का उद्धार करने की क्षमता अर्जित होती है। आज विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में अनेक ज्ञान

कार्यक्रमों के बारे में जागृति ही नहीं है, जरूरतों के बारे में ज्ञान ही नहीं है। समाज की आवश्यकताओं के प्रति वे संवेदनशील भी नहीं हैं। अक्सर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद लोग कई बार समाज के पारम्परिक तंतुओं से या तो संबंध नहीं रख पाते या वे उनके लिए महत्वहीन हो जाते हैं।

अत: उच्च शिक्षा अधिक प्रभावी, चुस्त, गतिशील, लचीली और अधिक विभिन्नताओं सहित होनी चाहिए। नवीनीकरण आवश्यकतानुसार आना जरूरी है। शिक्षा पर खर्च करना आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है पर खर्च करने की चतुरता, उस व्यय से अधिकाधिक प्राप्त करने की क्षमता आनी चाहिए, जो आज नहीं है। शिक्षक और शिक्षण प्रबंध को बहुमुखी, चतुर्मुखी होना शिक्षा और देश के विकास के लिए जरूरी है। ज्ञान स्थिर नहीं रहता, आज के युग में यह लक्ष्मी से कम चंचल नहीं है।

निष्कर्ष

शिक्षा प्रणाली को बचाने के लिए समय की एक मांग है। जो निश्चित रूप से असंभव नहीं है। हमारी विश्वविद्यालय प्रणाली ठहरा हुआ पानी बन गयी है, इसे गति प्रदान करना है ताकि शिक्षा के प्रकाश से लोगों के जीवन को प्रकाशपूर्ण बनाया जा सके। जिस देश में प्राथमिक शिक्षा ही सामान्य जन के लिए कठिन हो, वहाँ उच्च शिक्षा विशिष्ट मामला है। शिक्षा हमारे सर्वांगीण विकास का सेतु है। उच्च शिक्षा हमें परिपूर्णता की तरफ ले जाने में मदद करती है। हमारी रुचि के क्षेत्र को वह गहराई से समझाती है। इसीलिए उच्च शिक्षा के लिए शिक्षा–प्रविधि का नवाचारी बने रहना अति आवश्यक है। उच्च शिक्षा में नव दृष्टि बोध उसे प्रासंगिक व औचित्यपूर्ण बनाएगा। पुरानी राहों से आज की शिक्षा का सफर नहीं काटा जा सकता। अब अन्तर्विषयक शोध अध्ययन का समय है। चूंकि दुनिया व विषयों की अंतरंगता बढ़ रही है। इससे अपने समय को समझने में अधिक मदद मिलती है।

देश के विकास में शिक्षा का अहम योगदान रहा है और आगे भी रहेगा। इस लिहाज से देखें तो देश की सुदृढ़ शिक्षा व्यवस्था को लेकर गहन विचार किए जाने की जरूरत है। मगर अफसोस, भारत में अब तक मजबूत शिक्षा नीति नहीं बनाई जा सकी है। नतीजतन, हालात यह बन रहे हैं कि भारतीय छात्रों को विदेशी जमीन तलाशनी पड़ रही है। उच्च शिक्षा नीति और व्यवस्था में किसी तरह का बदलाव नहीं होने का परिणाम है कि

भारतीय छात्रों का रूझान विदेशों में जाकर शिक्षा ग्रहण करने की तरफ बढ़ता जा रहा है। भले ही उन्हें इसके एवज में कोई भी कीमत चुकानी पड़े। विशेषज्ञों के एक कोर ग्रुप ने कहा है कि प्रतिबंध, सीमित करना या विदेशी विश्वविद्यालयों के संचालन में बाधा, देश के हित में नहीं होगा, किंतु मूल्यांकन और जांच हेतु एक प्रणाली जरूर बनानी चाहिए।

देश को अपने लिए सीखने की ऐसी व्यवस्था बनानी ही होगी जिसमें तत्काल फायदा भले ही कम हो लेकिन उच्च शिक्षा के लिहाज से वह महत्वपूर्ण हो। भारत को तुरंत ही ऐसे विश्वविद्यालयों की जरूरत है जिनकी शोध के लिए पूरी दुनिया में एक पहचान हो, ताकि भारत दुनिया की नई ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में पूरा योगदान दे सके। यह बार-बार कहा जाता है कि भारत में उच्च शिक्षा व्यवस्था के निजीकरण की प्रक्रिया चल रही है। लेकिन यह शिक्षा व्यवस्था के लिए किसी व्यापक सुधार योजना का नतीजा नहीं है। भारत को अपनी उच्च शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए खुद ही पहल करनी होगी, विदेशी संस्थान और ब्रांड तो इसमें महज सहयोग भर कर सकते हैं। हमें उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय प्रतिभाओं को देश में फलने-फूलने का वातावरण उपलब्ध करने और हिन्दुस्तानी दिमाग की उर्वरता का पूरा-पूरा उपयोग किया जाना है। देश को अगर 2020 तक सुपर पावर बनना है तो उसके लिए अच्छी शिक्षा, पढ़े-लिखे तथा दक्ष कर्मियों की जरूरत है। हमें काफी बड़ी संख्या में इनकी जरूरत और इसके लिए उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सख्त परिवर्तनों की जरूरत है। बहरहाल, नई सहस्त्राब्दी में उच्च स्तर के कौशल एवं कोमलता, कठोर अनुशासन, प्रतिबद्धता और प्रेरणा का एक उच्च स्तर रख कर वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने की जरूरत है।

संदर्भ

आनंदकृष्णन, एम. (2006) : प्राइवेटाइजेशन ऑफ हायर एज्यूकेशन : अपॉरच्युनिटीज एंड एनामलीज. प्राइवेटाइजेशन एंड कामर्सियलाइजेशन ऑफ हायर एज्यूकेशन, आर्गेनाइज्ड बाइ नेपा, मई 2, 2006, नई दिल्ली.

एमएचआरडी (2006) : एनुअल रिपॉर्ट, डिर्पाटमेंट ऑफ सेकण्डरी एंड हायर एज्युकेशन, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली.

तिलक, जान्ध्याला (2007) : हायर एजुकेशन इन इंडिया : फंडिंग एक्सेस, क्वालिटी एण्ड इक्विटी, न्यूपा, नई दिल्ली.

प्लानिंग कमीशन (1999) : अप्रोच पेपर टू द टेन्थ फाइव ईयर प्लान (2002-2007), प्लानिंग कमीशन, नई दिल्ली.

मुदालियर, लक्ष्मण स्वामी (1953) : सेकेन्ड्री एजुकेशन कमीशन (1952-53) रिपोर्ट, मद्रास, जुविटर प्रेस.

सिंह, आर. पी. (2010) : ऑन ऑपनिंग अ 'वर्ल्ड' क्लास यूनिवर्सिटी, यूनिवर्सिटी न्यूज, नई दिल्ली, 48 (37), सितम्बर 13-19, 2010

यूजीसी (2005) : रिसर्च हैंडबुक : टूअर्डस नर्चरिंग रिसर्च कल्चर इन हायर एजुकेशन : इंश्टीट्यूशंस इन इन्डिया, यूनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन, नई दिल्ली.

नेशनल नॉलिज कमीशन (2007) : रिपोर्ट टू द नेशन 2006, नेशनल नॉलिज कमीशन, नई दिल्ली (साइटेड एज एनकेसी 2007) (http://knowledgecommission.gov.in/report2006/default.asp)

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 1, अप्रैल 2011

शोध टिप्पणी/संवाद

शिक्षा, संस्कृति और परम्परा

राजेन्द्र पाल सिंह*

वैदिक शिक्षा की चर्चा स्वंय वेद करते हैं। शिक्षा का स्वरूप, शिक्षक का दायित्व, अच्छे अध्यापक और उसके प्रत्येक गुण की चर्चा, अयोग्य छात्र और ज्ञान आदि की परिभाषा स्वयं वदों में वर्णित है। यह आवश्यक है कि हम जानें कि गुणी अध्यापक कौन है और अच्छे–बुरे छात्र में क्या अन्तर है। अध्यापक अपने छात्र में क्या गुण देखना चाहता है और किस प्रकार के छात्र की भर्त्सना करता है। पढ़ाई कब समाप्त हो, छात्र को अपने परिवार कब लौटना चाहिये, कितनी फीस देनी चाहिये और उसे गुरु पत्नी को किस प्रकार से सम्बोधन करना चाहिये आदि, सभी बातें ऋग्वेद में दी गई हैं। यज्ञ, ज्ञान, बुद्धि आदि अनेक अन्य शब्दों की व्याख्या भी वेदों में मिलती है। यज्ञों का पढ़ने से क्या संबंध है, इसकी बात भी वेद करते हैं।

किन्तु इन व्याख्याओं अथवा वेदों से उदाहरण देने से पूर्व हमें जानना चाहिये कि वेदों के युग के भारत की सीमायें क्या थीं और वेदों के लेखक और प्रचारक कौन थे। वह कहाँ से आये थे और उनकी विस्तार सीमायें क्या थीं। पहली बात तो यही है कि क्या वेदों के रचयिता भारतीय थे अथवा विदेशी? या उनकी विस्तार सीमायें क्या थीं। क्या उनका भारत की संस्कृति से कोई सम्बन्ध था अथवा नहीं? इसी प्रकार की अनेक बातें हैं जिन पर न कोई एक मति है और न स्वीकार्य एक बात है। वेदों से सम्बन्धित अनेक ऐसे प्रश्न हैं जिनका निश्चित अथवा अन्तिम निर्णय सम्भव नहीं है। जबकि एक ओर तिलक जैसे विद्वान हैं जो आर्यों को विदेशी मूल का मानने से इन्कार करते हैं तो दूसरे और अनेक विद्वान हैं जो स्वयं वेदों में ही अनेक विदेशी प्रभावों, शब्दों और विषयों की जानकारी देने से नहीं चूकते। इसलिये लेखक ने विवादों से हटकर भारत रत्न काणे की व्याख्या को स्वीकार कर लिया है।

---

* सेवानिवृत्त डीन (शोध) तथा अध्यक्ष, एरिक, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली 110016

मैंने यह माना है कि वेदों से पहले का कोई ग्रंथ भारत में नहीं है और यद्यपि मोहन-जोदड़ो सभ्यता थी किन्तु उसका ठीक ठीक ज्ञान उपलब्ध आज तक नहीं है इसलिये भारत के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद ही हैं। उनके पढ़ने-पढ़ाने की विधि थी और उनको जीवित रखने की मौखिक परम्परा भी थी। जबकि विश्व में अनेक सभ्यताओं ने जन्म लिया है और अपनी छाप छोड़ी है जैसे मिस्र के पिरामिड अथवा बेबीलोन के झुलन-बगीचे आदि। किन्तु उनके ज्ञान को जीवित रखने की परम्परा का सर्वथा अभाव है। वेदों को जीवित रखने और उससे सम्बद्ध प्रत्येक पहलू को विकसित और जीवंत रखने की एक उत्कृष्ट पद्धति आज तक जीवित है तथा प्रभावी भी है।

इस संदर्भ में शिक्षा व्यवस्था जो वेदों में जन्मी और जिसने उन्हें समाप्त नहीं होने दिया वह व्यवस्था आज भी जीवित है। इस परम्परा को गुरुकुल पद्धति का नाम दिया गया। आज गुरुकुल और पाश्चात्य विश्वविद्यालयों को मिला जुलाकार प्राचीन गुरुकुल का एक ढाँचा भी खड़ा किया गया है किन्तु आज के संस्कृत विश्वविद्यालय प्राचीन गुरुकुलों अथवा आश्रमों के कहीं आसपास भी नहीं हैं। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में यद्यपि एक बड़ा बदलाव बौद्ध और मुस्लिम युग में आया किन्तु भारतीय सामाजिक व्यवस्था ने उस परम्परा को जीवित रखा। तक्षशिला और नालन्दा बौद्ध युग की देन हैं और इनके कारण बौद्ध धर्म का प्रसार और प्रचार भी हुआ किन्तु यह विशाल संस्थायें भी गुरुकुल व्यवस्था है जो सरकार के अनुदान पर आश्रित नहीं है और अपने मूल रूप में जीवित हैं। इस परम्परा को जीवित रखने वाले लोग अनेक स्थानों में हैं परन्तु अपने परम्परागत रूप में यह व्यवस्था तमिलनाडु, केरल और महाराष्ट्र में आज भी मिलती हैं। वैदिक परम्परा के कारण इन गुरुकुलों के छात्रों में किसी कटुता ने जन्म नहीं लिया। यह सही है कि इस पद्धति ने जाति व्यवस्था को काफी कठोर और रूढ़िवादी बना दिया। और यदि हम मार्क्सवादी विद्वान राहुल सांकृत्यायन अथवा डी.पी. चट्टोपाध्याय की बात मानें तो यह भी सत्य है कि ब्राह्मणों ने अपने वर्चस्व के लिए जातियों में भेदभाव बनाए रखा। सत्य कुछ भी हो पर यह सत्य है कि वैदिक ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए अनेक ब्राह्मण परिवारों को दरिद्रता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। आज भी वैदिक ज्ञान अपने मूल रूप में इसलिए सुरक्षित तथा जीवित है।

वैदिक शिक्षा गुरुकुलों में प्रचलित थी और उसका उत्कृष्ट रूप आश्रमों में देखा जा सकता था। जबकि गुरूकुल प्राथमिक शिक्षा के लिए थे किन्तु 'आश्रम' उच्च शिक्षा के केन्द्र थे जो आज के विश्वविद्यालयों जैसे प्रतीत होते हैं। किन्तु एक मूलभूत अन्तर

सदैव याद रखना होगा कि यह आश्रम गुरु के नाम पर चलते थे। जैसे कण्व आश्रम। नालन्दा और तक्षशिला के विश्वविद्यालय बौद्ध थे और इसलिए उनका प्रमुख उद्देश्य जनसाधारण की सेवा था।

बौद्ध विश्वविद्यालय समाजसेवी थे और उनका प्रमुख काम ज्ञान का प्रचार करना होता था इसलिए उनके अध्यापक और छात्र आस-पास के गांवों में नए ज्ञान का प्रचार करने में नहीं चूकते थे। यह सेवा आज के एक्सटेंशन केन्द्रों जैसी थी। मुग्रक्र में उच्च शिक्षा मदरसों में दी जाती थी। बौद्धों के बाद दी जाने वाली उच्च शिक्षा के पठन-पाठन के लिए इन संस्थाओं का जन्म भारत में हुआ। यद्यपि यहाँ के अधिकांश अध्यापक मुसलमान थे। किन्तु उनमें हिन्दू छात्रों का बाहुल्य था और वहाँ धार्मिक कट्टरता पढ़ने में किसी प्रकार की असुविधा उत्पन्न नहीं करती थी। राज्य द्वारा पोषित और अनुदानित होने के बाद भी यह काफी हद तक धर्म-निरपेक्ष थी जैसे कि अंग्रेजी युग के कालेज। विस्तार से पढ़ने के लिए देखिये एडम रपट जो विस्तार से इन मदरसों के छात्रों की भी पसंद और पठन-पाठन विधि की चर्चा करती है। अंग्रेजों के आगमन के बाद नौकरी के लिए यह सब छात्र सरकारी स्कूल अथवा ईसाई स्कूलों में जाने लगे (एडम रिपोर्ट प्रथम एवं द्वितीय)।

कहने का अर्थ है कि आज भारत में अनेक प्रकार की शिक्षा उपलब्ध है और सभी व्यवस्थायें अपने-अपने कारणों से फल-फूल रही हैं। और वैदिक शिक्षा देने वाली अनेकानेक संस्थायें भी हैं। यहाँ कदाचित यह बताना भी आवश्यक है प्राचीन भारत की आज सीमायें बदल चुकी हैं परन्तु यह ऐतिहासिक कारण वैदिक शिक्षा परंपरा को अविरत चलने से नहीं रोक पाये हैं।

प्राचीन आर्यावर्त की चर्चा भारतरत्न काणे ने अपने 'धर्मशास्त्र का इतिहास' (प्रथम भाग, पृ. सं. 106-08) में की है। उनके वर्णन से ऐसा लगता है प्राचीन आर्यावर्त में आज का न दक्षिण भाग सम्मिलित था और न पूर्वांचल प्रदेश अथावा सिक्किम। दक्षिण में यह सीमा विंध्याचल पर समाप्त हाती थी। इस प्रकार सीमा के संबंध में ऋग्वेद 5/53/9 काबुक नदी; (10-76-6) कुर्रम, सप्तसिन्धु (ऋग्वेद 2/12/12); यमुना (ऋग् 5/52/17); गंगा (ऋग् 6/45/31); सरस्वती (ऋग् 3/23/4) आदि की चर्चा है पर इन्हें विन्ध्याचल से नीचे की जानकारी नहीं थी। बोधायन, मनु, आपस्तम्ब आदि धर्मसूत्रों में गंगा, यमुना, सरस्वती आदि के मध्य को ही आर्यावर्त माना गया है।

इसलिए उस समय आर्यावर्त की सीमारेखा यही थी। पुराणों में इस सीमा के बढ़ाये जाने की बात कही गई है। डा. काणे के मतानुसार ''एक मनोरंजक बात यह है कि भारत वर्ष के वह प्रदेश जो आज अपने को अति कट्टर मानते हैं, आदित्य पुराण द्वारा वास के योग्य नहीं माने गये हैं। यहां तक कि वहाँ धर्मयात्रा को छोड़कर कभी भी ठहरने पर जातिच्युत का दोष प्राप्त होता था तथा प्रायश्चित करना पड़ता था। आदिपुराण में आया है कि आर्यावर्त के रहने वाले को सिन्धु या करतोया को धर्मयात्रा के अतिरिक्त कभी पार नहीं करना चाहिये और यदि वह ऐसा करेंगे तो चन्द्रायण व्रत करना चाहिये।''

भारत की सामाजिक व्यवस्था के उद्गम और उसकी विशिष्टताओं की चर्चा अनेक ग्रंथों में की गई है, ठीक ऐसी ही चर्चा अधिकाशं जातियों एवं उपजातियों के संदर्भ में हुई है। जाति के उद्गम के संदर्भ में अनेक अनुमान और विचार-शाखायें हैं। कुछ ग्रंथकारों ने तो कुल या वर्ग या व्यवसाय के आधार पर ही अपने मत निर्धारित किये हैं। भारतीय विद्वानों के अलावा विदेशी शोधकर्ताओं ने भी इस विषय पर अपने-अपने दृष्टिकोण प्रकट किये हैं। एक ओर भारतीय जाति व्यवस्था की प्रशंसा हुई है तो दूसरी ओर इसकी कठोर आलोचनाएँ भी हुई हैं।

भारतीय शैक्षिक परंपरा पर किसी आलेख के लिखने से पहले कुछ शब्दों के अर्थ समझने होंगे। अत: मैंने भारतरत्न पांडुरंग वामन काणे के 'धर्मशास्त्र का इतिहास, में दी गई परिभाषाओं को स्वीकार किया है। इस पुस्तक में धर्म, संस्कार, शैक्षिक परंपरा आदि की परिभाषा दी गई है। ऐसा नहीं है कि हम इन शब्दों का प्रयोग नहीं करते किन्तु शब्द या उसकी परिभाषा वेद सम्मत है या नहीं प्राय: यह नहीं जानते। भारतरत्न काणे के ग्रन्थ तर्कसम्मत हैं इसीलिये उसमें दिया गया प्रत्येक शब्दार्थ और परिभाषा संशोधन या परिवर्धन की सीमा से परे है।

हम प्राय: 'धर्म' शब्द का प्रयोग सदैव इसके मूलार्थ की पृष्ठभूमि में नहीं करते और प्राय: यह भी भूल जाते हैं कि समय शब्दों के अर्थ बदल देता है। इसलिये यह नितांत आवश्यक है कि हम इन शब्दों के मूल रूप को समझ लें।

अति प्रचीन काल से ही धर्मशास्त्र के नाम पर अनेक विषयों की चर्चा होती रही है। धर्मशास्त्रों के अनेक लेखक जैसे-गौतम, बोधायन, आपस्वम्ब आदि ने धर्मशास्त्र के अतंर्गत अनेक विषयों का विवेचन किया है जैसे- वर्ग/ वर्ण, आश्रम, उनके

विशेषाधिकार, कर्त्तव्य एवं उत्तराधिकार, गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक के संस्कार; ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य; अनध्याय (छुट्टी के दिन); स्नातक जिसका प्रथम आश्रम समाप्त हो जाता है; विवाह तथा उससे सम्बद्ध अन्य बातें; गृहस्थ-कर्त्तव्य (द्वितीय आश्रम); शौच, पंचमहायज्ञ; दान भक्ष्याभक्ष्य; शुद्धि; अन्त्येष्टि, श्राद्ध; स्त्री धर्म; स्त्री-पुरूष धर्म; क्षत्रिय एवं राजा के धर्म; व्यवहार (कानून विधि; अपराध, दंड) साझा बँटवारा, दयाभाग, गोद लेना, जुआ आदि; चार प्रमुख आश्रम; वर्णसंकर तथा उनके व्यवसाय; आपद् कर्म; प्रायश्चित तथा कर्म विपाक; शान्ति; वानप्रस्थ (तृतीय आश्रम); और सन्यास।

देखने वाली बात यह है कि सभी धर्मशास्त्र एक समान इन सभी विषयों की चर्चा नहीं करते और न वह किसी क्रम को ही मानते हैं। कुछ धर्मशास्त्रों में व्रत, तीर्थ स्थान, उत्सर्गों एवं प्रतिष्ठा (धर्मशाला), मन्दिर, पुष्पकरिणी, आदि) की चर्चा है किन्तु यह भाग बहुत महत्त्व के नहीं हैं।

उपरोक्त बातों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि धर्म-संबंधी धारणा का सूत्र काफी व्यापक था और मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को स्पर्श करता था। धर्म किसी सम्प्रदाय या मत का पोषण नहीं करता था वरन् यह तो जीवन की आचार-संहिता थी। इसी आधार पर धर्म को दो भागों में बाँटा गया था: एक श्रौत एवं दूसरा स्मृति। श्रौत धर्म में वह सब आता था जिसका संबंध वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रंथों से था। स्मृति का संबंध उन बातों से था जो स्मृतियों में वर्णित हैं। यदि श्रौत धर्म में उन कृत्यों या संस्कारों की चर्चा थी जो ब्राह्मण ग्रंथों में दिये गये थे जैसे- तीन पवित्र अग्नियों की प्रतिष्ठा, पूर्णमासी और अमावस्या के यज्ञ, सोम कृत्य आदि। स्मृति धर्म में वह सब शामिल था जो स्मृतियों में दिये गये थे। कुछ धर्मग्रन्थ श्रौत (वैदिक), स्मार्त (स्मृतियों पर आधारित) और शिष्टाचार (लोगों के आचार-विचार आदि) की चर्चा करते हैं। एक विभाजन के अनुसार धर्म के छ: प्रकार हैं: वर्ण धर्म जैसे ब्राह्मण को पलाश वृक्ष का दंड ग्रहण करना चाहिए; नैसर्गिक धर्म (वर्जित कर्म करने पर प्रायश्चित); गुण धर्म जैसे राजा को प्रजा का ध्यान रखना चाहिये और छठा धर्म साधारण धर्म है जिसमें अहिंसा और साधु वृत्तियाँ सम्मिलित हैं। सामान्य धर्म की चर्चा इसलिए आवश्यक है क्योंकि इस धर्म का क्षेत्र व्यापक है और सभी को इसका पालन करना चाहिए। इसमें सत्य का पालन सभी के लिये अनिवार्य है। ऋग्वेद (7/104/12) में आया है कि सत्य तथा असत्य में प्रतियोगिता रहती है। सोम जो सत्य है, जो ऋतु है उसी की रक्षा करता है,

शतपथ ब्राह्मण में आया है कि मनुष्य को सत्य के अतिरिक्त कुछ नहीं बोलना चाहिए। तैतिरीय उपनिषद में समावर्तन नामक संस्कार के समय गुरु शिष्य से कहता है कि सत्य वद, धर्म चर (1/12/1) छान्दोग्योपनिषद (3/17) में दक्षिणा पाँच प्रकार की बताई गयी हैं। क्योंकि तपों के पाँच गुण विशेष, दान, अर्जव, अहिंसा और सत्यवचन हैं। बृहदारण्योपनिषद में कहा गया है कि व्यावहारिक जीवन में सत्य और धर्म समान हैं। इसी उपनिषद में एक उदात्त स्तुति है ''असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर''। ''तस्मात सत्यं वदन्नमाहुधर्म वदनीति धर्म वा वदन्तं सत्यं वदतीत्येतद् ध्येवैतदुभयं भवित''। बृह (1/4/14)। छान्दोग्य में ब्रह्म का संसार सभी दुष्कर्मों से रहित है। केवल वही वहाँ प्रवेश कर सकते हैं जिसने ब्रह्मचारी जैसा जीवन बिताया है। यह उपनिषद पाँच पापों की भर्त्सना करता है (5/10) सोने की चोरी, सुरापान, ब्रह्महत्या, गुरु शैय्या को अपवित्र करना एवं इन सबके साथ संबंध। उद्योग पर्व (43/20) में ब्राह्मणों के लिए 12 व्रत बताये गये हैं। वशिष्ट में चुगलखोरी, ईर्ष्या, घमंड, अहंकार, अविश्वास, कपट, आत्म प्रशंसा, दूसरों को गाली देना, प्रवचना, लोभ, क्रोध, अवबोध, प्रतिस्पर्धा आदि को छोड़ने को कहा गया है। मनु (4/239) कहते हैं ''न माता-पिता न पत्नी-न पुत्र उस संसार में साथी होंगे, केवल सदाचार ही साथ देगा''।

साधारण भाषा में धर्म मनुष्य की प्रत्येक भूमिका में आचरण के लिए दिशा-निर्देश है। वह मानव की प्रत्येक क्रिया, अवस्था तथा परिभाषा बताता है। हम सभी एक ही परिवार में रहते हुए अनेक भूमिकाओं का एक साथ निर्वाह करते हैं- जैसे हम पुत्र भी हैं, पिता भी हैं, जीविका भी कमाते हैं, पत्नी से प्रेम भी करते हैं और माँ का सम्मान भी करते हैं। उपरोक्त भूमिकाएं एक ही प्राणी निभाता है। किन्तु प्रत्येक भूमिका के अलग-अलग कर्त्तव्य हैं। प्रत्येक भूमिका यदि धर्म शास्त्रों के साथ निभाई जाय तो व्यक्ति तथा समाज दोनों ही सुखी रहेंगे। यही प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है। धर्म इसलिए अंग्रेजों का 'रिलीजन' या मद नहीं है। अपनी प्रत्येक भूमिका में आचरण की उचित विधि है। चार पुरुषार्थों धर्म, कर्म, काम और मोक्ष में धर्म प्रथम पुरुषार्थ है। यह मानना सर्वथा भूल होगी की धर्म का पालन आसान है। क्योंकि प्रत्येक कदम पर इसमें असुविधा है एवं धैर्य का पालन करना पड़ता है और बिना किसी लिखित अथवा अलिखित निर्देश के कर्त्तव्य निर्वाह संभव नहीं है। धर्म निर्वाह वह भी अवस्था, साधन

और दृढ़ निश्चय के बिना ठीक-ठीक कर पाना आसान नहीं है। इसीलिए प्रत्येक प्राणी को अपनी समस्त भूमिकाओं तथा उनके अनुरूप कर्त्तव्य निर्वाह की विधि आनी चाहिए। इसीलिए धर्म व्यापक ही नहीं वरन् जीवन के प्रत्येक पहलू और कर्त्तव्य का निरंतर दिशा-निर्देश है इसीलिए एक वचन होते हुए भी बहु वचन है और अपनी सम्पूर्ण अवस्था में जीवन के प्रत्येक आयाम की व्याख्या भी है।

इन चार पुरुषार्थों में मोक्ष एक आदर्श है और इसकी प्राप्ति सबके लिए संभव नहीं है। अन्य तीन पुरुषार्थों में काम को नीच पुरुषार्थ माना गया है। वात्स्यायन धर्म को श्रेष्ठ और काम को तीसरी कोटि में रखते हैं व केवल राजा के लिए अर्थ की महत्ता स्वीकार करते हैं। यद्यपि प्रत्येक प्राणी को तीनों पुरुषार्थों की प्राप्ति करने का प्रयत्न करना चाहिए। किन्तु यदि वह ऐसा करने में सफल न हो तो उसे धर्म की प्राप्ति की चेष्टा करनी चाहिए। याज्ञवल्क्य (1/115) ने कहा है कि जो धर्म के विरूद्ध न हो ऐसे समस्त कार्य अथवा गुण उचित हैं।

धर्मशास्त्रकारों ने इस प्रकार आसन्न एवं परम लक्ष्यों एवम् प्रेरणाओं की ओर संकेत किया है और उन्हें ही श्रेष्टतम माना है। और इसलिये तन और मन, दोनों को ही अनुशासित होना चाहिए। उच्चतर मूल्यों की प्राप्ति के लिये निम्नतर मूल्यों को आश्रित दशा में रहना होगा। मनु की मान्यता है कि मनुष्य सदैव वासनाओं की ओर झुकता है। इसलिये हित और अहित के अन्तर को समझना चाहिये। वशिष्ठ का मत है कि सत्य, अक्रोध, दान, अंहिसा, प्रजनन आदि सामान्य बातें सभी वर्गों और जातियों के लिये अनिवार्य हैं। गौतम (10/52) ने तो सभी वर्गों के लिये भी इनका पालन करने का निर्देश दिया है। मनु ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच और इन्द्रिय निग्रह को सभी वर्णों का धर्म माना है।

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि सभी शास्त्र सभी उपरोक्त आचरणों के न तो क्रम को मानते हैं और न उनकी संख्या पर ही एकमत हैं। यदि सम्राट अशोक के शिलालेख-दया, उदारता, सत्य, शुद्धि, भद्रता, शान्ति, प्रसन्नता, मधुता और आत्म संयम की चर्चा करते हैं तो शान्ति पर्व में अक्रोध, सत्य वचन, साधुता, क्षमा, प्रजनन, शौच, अद्रोह, आर्जव और मृत्यु/मरण की बात कही गई है।

उपरोक्त चर्चा से धर्माचरण का वैविध्य और विस्तार ज्ञात होता है। यह धर्म किसी

भी सम्प्रदाय या रिलीजन के विरूद्ध नहीं हो सकता है और न किसी को मानव-विरोधी आचरण की आज्ञा ही देता है। संक्षेप में यही वैदिक धर्म की सही परिभाषा है।

संस्कार और परम्परा

संस्कारों का जन्म हमारी सामाजिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है। परन्तु जाति और वर्ण को लेकर ही अनेक विवाद हैं। कुछ विद्वान जाति का पुरुष सूक्त (ऋग्वेद 10/90) से ही उद्‌गम मानते हैं किन्तु अनेकानेक विद्वान यह मानते हैं कि वास्तव में वर्ण व्यवस्था ही ठीक है क्योंकि स्वयं वेद इसकी चर्चा करते हैं। उदाहरण के लिये ऋग्वेद (9/11/2/3) उदाहरण देता है, ''मैं स्तुतिकर्ता हूँ मेरे पिता वैद्य हैं, मेरी मां चक्की पर आटा पीसती हैं। हम लोग विविध क्रियाओं से धनोपार्जन करना चाहते हैं। ''एक अन्य स्थान पर ऋग्वेद (3/44/5) कहता है ''हे सोमपान करने वाले इन्द्र, क्या तुम मुझे लोगों का रक्षक बनाओगे अथवा राजा? क्या तुम सोम पीकर मस्त रहने वाला ऋषि बनाओगे या अनन्त धन दोगे।''

ऋग्वेद में 'ब्राह्मण' शब्द कई स्थानों पर आया है किन्तु यह किसी जाति का द्योतक नहीं है। डॉ. काणे का कथन है कि ऐत्तरेय ब्राह्मण में सोम ब्राह्मणों का भोजन माना गया है। किन्तु एक क्षत्रिय को न्यग्रोध वृक्ष के तन्तुओं, उदुम्बर, अश्वत्थ एवं प्लक्ष वृक्ष के फलों को कूटकर पीना पड़ता था। ऐसा लगता है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय दो भिन्न दल बन गये थे। किन्तु यह दल आनुवंशिक नहीं थे। उनके भोजन और विवाह भी अलग-अलग हो गये थे, इसका बोध आज तक ठीक से सम्भव नहीं है। धर्मसूत्र इन दोनों में लचीलेपन को स्वीकार करते हैं, यद्यपि जन्मना ब्राह्मण के संकेत मिलते हैं।

वैसे ब्रह्म शब्द का अर्थ है स्तुति अथवा 'प्रार्थना'। अथर्ववेद में (2/15/4) में ब्रह्म शब्द ब्राह्मण वर्ग के अर्थ में आया है। इसका अर्थ हुआ कि इस शब्द का अर्थ कुछ शताब्दियों में बदल गया। कहीं-कहीं पर यह शब्द क्रम से ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों के लिये प्रयुक्त हुये हैं जैसे ''ब्रह्म वै ब्राह्मण क्षत्र राजन्य'' (तैतिरीय ब्राह्मण 3/9/14) ऐसे उदाहरण भी हैं, जिसमें एक ही राजा के दो पुत्रों में एक राजा हुआ और दूसरा पुरोहित (देखिये डा. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, 9, 111)। आज बहुत कुछ बदल गया है। इसका सर्वाधिक प्रभाव हमारे संस्कारों पर पड़ा है। एक ओर तो जीविकोपार्जन कठिन हुआ है और दूसरी ओर अवसरवादिता भी बढ़ी है। यदि प्राचीन आर्यावर्त की चर्चा करें

तो उसके अधिकांश भाग उसकी आज की सीमा से बाहर हैं। जैसे काबुल नदी से प्रारम्भ होकर वह कश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और उड़ीसा तक ही था। विन्ध्याचल से नीचे अर्थात् महाराष्ट्र, तमिलनाडु, केरल तथा आज के कर्नाटक आदि भाग उसमें नहीं थे। इसके कारणों में यदि पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से उभर कर आ रहा है तो दूसरी ओर जीविकोपार्जन के मूल स्रोत प्राय: समाप्त हो गये हैं। जाति तथा वर्ण धर्म का अपना उदार रूप में उत्तर भारत में बौद्ध धर्म के प्रारम्भ तक देखा गया। किन्तु बौद्ध धर्म स्वयं उस प्राचीन व्यवस्था के सामने झुक गया। यह भारत के इतिहास का वह भाग है जहाँ हम एक ओर हिन्दू धर्म और उसी परम्पराओं का पुनरोत्थान देखते हैं तो बौद्ध धर्म का विदेशों में प्रचार भी देखते हैं। यद्यपि अभी तक निश्चित रूप में कहना कठिन है कि हिन्दू धर्म का औदार्य क्योंकर समाप्त हुआ। परन्तु आज उनकी मान्यताओं की उपेक्षा अवश्य समझ आती है। नौकरी तथा जीविकोपार्जन के अनेक स्रोत समाप्त होते जा रहे हैं। अनेक नये मत-मतान्तर जन्म ले चुके हैं और विदेशों में नौकरी पाने के लालच ने परम्पराओं के चलने में व्यवधान उत्पन्न किया है। विवाह जन्म, आदर आदि की नई व्यवस्थायें जन्म ले चुकी हैं। इसलिए संस्कारों के मूल रूप में परिवर्तन आना अनिवार्य था। हमारी उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुये स्वयं संस्कारों की चर्चा अनिवार्य है। इसके दो मुख्य कारण हैं- प्रथम तो इन संस्कारों का ठीक से स्मरण कर लिया जाय तथा उनके महत्व को समझा जाय तथा द्वितीय इससे यह पता चल जायेगा कि हमने क्या खोया और क्या पाया। जन्म से लेकर मृत्यु तथा उसके बाद भी संस्कारी लोग/परिवार अपने स्पष्ट पहचान बना पाते हैं। संस्कार न केवल व्यक्ति विशेष का परिचय होते हैं वरन् उसकी समस्त परिवार का भी परिचय देते हैं।

संस्कार

संस्कार शब्द प्राचीन वैदिक साहित्य में नहीं मिलता किन्तु 'सम' के साथ 'कृ' धातु तथा संस्कृत शब्द बहुधा मिल जाते हैं। ऋग्वेद (5/76/2) में संस्कृत शब्द 'बरतन' के साथ के लिए प्रयुक्त हुआ है। संदर्भ है ''दोनों अश्विन पवित्र हुए बरतन को हानि नहीं पहुंचाते'' (शतपथ ब्राह्मण 1/1/4/10) तथा पुन: वही (3/2/1/22), में आया है- ''तस्माद स्त्री पुमांसं संस्कृते'' अर्थात स्त्री किसी संस्कृत (सुगठित) घर में खड़े पुरुष के पास पहुंचती है। छान्दोग्योपनिषद में भी (4/16/1-2) उस यज्ञ की दो विधियां हैं-

मन से या वाणी से वह ब्रह्मा उनमें से एक को मन से चमकता है। जैमिनी के सूत्रों में 'संस्कार' शब्द अनेक बार आया है। (3/1/3;3/1/15;3/8/3) आदि। उन्हें 'संस्कार' उपनयन के संदर्भ में प्रयुक्त किया गया है। 3/1/3 की व्याख्या में संस्कार की परिभाषा इस प्रकार दी गई है। संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी योग्य हो जाता है। संस्कार वह रीतियां हैं जो योग्यता प्रदान करती है।

संस्कारों का उद्देश्य: मनु (2/27-28) के अनुसार द्विजातियों में माता-पिता के वीर्य एवं गर्भाशय के समय के दोषों में उस समय के होम तथा जात कर्म से, मुंडन संस्कार से तथा मूँज की मेखला पहनने से अर्थात् उपनयन से दूर किया जाता है। वेदाध्यय, व्रत, होम, त्रेविध व्रत, पूजा, सन्तानोत्पत्ति, पंच महायज्ञों तथा वैदिक यज्ञों से मानव शरीर ब्रह्म-प्राप्ति के योग्य बन जाता है। याज्ञवल्क्य (1/13/1) के अनुसार संस्कार करने से बीज-गर्भ से उत्पन्न दोष मिट जाते हैं।

संक्षेप में संस्कारों के पालन से अनेक उद्देश्यों की प्राप्ति का वर्णन है। जैसे उपनयन का उद्देश्य आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दोनों हैं। इससे एक तो गुण संपन्न व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित होता है दूसरे वेदाध्ययन का मार्ग खुलता है। ऐसा व्यक्ति नये जीवन का प्रारम्भ करता है। नामकरण, अन्नप्राशन, निष्कर्मण आदि संस्कार तो लौकिक संस्कार मात्र हैं। किन्तु गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन ऐसे संस्कारों का महत्व रहस्यात्मक तथा प्रतीकात्मक दोनों ही है। विवाह संस्कार का महत्व था दो व्यक्तियों को आत्म निग्रह आत्म-त्याग एवं परस्पर सहयोग की भूमि पर लाकर समाज को चलाने के लिए प्रेरित करना आदि।

संस्कारों को दो कोटियों में बांटा गया है। ब्रह्म और दैव। गर्भाधान जैसे संस्कार केवल स्मृतियों में वर्णित है इसलिए ब्रह्म कहलाते हैं। पाक यज्ञ (पकाये भोजन की आहुति) यज्ञ आदि देव यज्ञ कहलाते हैं

संस्कारों की संख्या विवादित है। जैसे गौतम (8/14-24) 40 संस्कारों एवं आत्मा के आठ गुणशील का वर्णन करते हैं। किन्तु अंगिरस इनकी संख्या केवल 27 मानते हैं। किन्तु व्यास (1/14-15) इनकी संख्या केवल 16 ही मानते हैं। कहना न होगा कि हिन्दुओं में प्राय: 16 संस्कार ही माने गये हैं। कुछ शास्त्रों में ऐसा भी आया है कि जातकर्म से चूड़ाकर्म तक के संस्कार के समय पुरुष वर्ग वैदिक मंत्रों के साथ यज्ञ करे।

हमारे लिये यही 16 संस्कार महत्व के हैं और इन्हीं की चर्चा भी होती है। इन संस्कारों का महत्व इसलिये है कि इनसे व्यक्ति का दोष मार्जन होता है, उसमें कुछ गुण उत्पन्न होते हैं और यदि उसके शरीर में कोई कमी है तो इन संस्कारों के माध्यम से वह दूर हो जाती है जैसे मूक, बधिर आदि की कमी पूरी हो जाती है।

पुरुष के लिए चार आश्रमों का विधान है। और वेदों के लिए प्रत्येक को 12 वर्ष दिये गये हैं। 24 से 48 वर्षों की आयु में बुद्धिमान व्यक्ति को अनुसंधान करने और ज्ञानी बनने का अवसर प्रदान करना था। यह शिक्षा वेद आधारित थी। लड़के और लड़कियों के पढ़ने की अलग-अलग व्यवस्था थी। पुरुष के लिए धर्म, कर्म, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ बताये गये हैं और इनके लिये 6 वेदांगों की चर्चा भी है।

माना गया है कि संस्कारों के माध्यम से पूर्व जन्म के कलुष धोये जाते हैं। उदाहरण के लिए आचार्य उपनयन के माध्यम से तीन रात्रि अपने गर्भ में रखकर अर्थात अपने सीने से लगाकर उसके समस्त पूर्वजन्म के पापों से मुक्ति दिलाता है। यहाँ कलुष या अन्धकार का अर्थ है अज्ञान से मुक्ति। अज्ञान अथवा अन्धकार तीन भागों में बताया गया है (क). 1. स्थूल, 2. सूक्ष्म विषयक और 3. दृष्टि विषयक (ख). आत्मा के संदर्भ में (ग). आत्मा-अनात्मा के संदर्भ में। इन तीनों की मुक्ति के अंधकार दूर करने की प्रक्रिया है और वैदिक ज्ञान के प्रारम्भ की प्रक्रिया या विद्याध्ययन का प्रारंभ ही अज्ञान समाप्त करना है। आपस्तम्ब धर्म सूत्र के अनुसार यह ऐसा संस्कार है जो गायत्री मंत्र सिखाकर सम्पन्न किया जाता है।

विद्यारंभ से पूर्व अन्य धर्मों में भी बच्चों को इसी प्रकार की प्रक्रिया करनी पड़ती है। चार पुरुषार्थ बताये गये हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष अथवा मुक्ति जीवन का परम उद्देश्य है। इसीलिये वैदिक लोग 4 आश्रमों की चर्चा करते हैं। यदि मनुष्य की आयु 100 वर्ष मानें तो प्रत्येक आश्रम 25 वर्ष का होगा-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। किन्तु उस युग के प्रत्येक व्यक्ति की कामना थी कि उसके अंग-प्रत्यंग अंतिम दिन तक काम करते रहें। यदि मनुष्य अपने प्रत्येक काम में शुचिता का ध्यान रखेगा और किसी अन्य को बिना पीड़ा दिये धर्म का पालन करेगा तो उसे जीवन में मुक्ति की प्राप्ति अवश्य होगी। यही वेद कहते हैं। शास्त्रों में विधियां दी गयी हैं। उन्हीं के पालन से व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता है। धर्म को अपने आचरण का अंग बना लेना होगा और इसे जीवन की परम्परा का रूप देना होगा।

जो व्यक्ति, समाज अथवा कोई अन्य वैदिक आचरण को अपनी परम्परा का अंश बना देगा और उसी के कारण जाना जायेगा तो निश्चित है वह साधुवाद को प्राप्त होगा और मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी होगा। परम्परायें तथा उनका पालन हमारी अपनी पहचान है और हमारे गुण-शील ही हमें जीवन में सफलता दिलाते हैं। व्यास ने धर्म की परिभाषा में यह भी कहा है, ''जो तुम्हारे लिये प्रतिकूल हो वह दूसरे के साथ मत करो। यही धर्म है।'' और आदि शंकराचार्य ने कहा है, जो जगत की स्थिरता और प्राणियों के उत्कर्ष का कारण है वही धर्म है''। निश्चित है ऐसे मानव धर्म के पालन की परम्परा ही मानने योग्य है।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 1, अप्रैल 2011

शोध टिप्पणी/संवाद

मुक्त विद्यालयीय शिक्षा संस्थान के विद्यार्थियों की उपलब्धि पर वीडियो पाठ अध्ययन एवं शैक्षिक दूरदर्शन की प्रभावशीलता

सत्यवीर*

यह तकनीकी युग है। संसार के कोने-कोने में रेडियो, टेलिविजन, कंप्यूटर एवं इंटरनेट जैसे संचार माध्यमों को सर्वाधिक लोकप्रिय जनसंचार माध्यम के रूप में जाना जाता है। संचार तकनीकी और प्रसारण पर आधारित इलेक्ट्रानिक माध्यमों ने सूचना के त्वरित एवं मितव्ययतापूर्ण प्रसारण के क्षेत्र में एक नयी गति प्रदान की है। शिक्षा के क्षेत्र में जनसंचार की आधुनिक तकनीक के रूप में, विशेषकर उपग्रह आधारित तकनीक द्वारा दूरदर्शन ने विश्वव्यापी संचार प्रणाली में कई अहम् भूमिका अदा की है। विकसित देश में दूरदर्शन आधारित प्रणाली के दूसरे सहायक साधनों के रूप में वीडियो, केबल टी.वी. बन्द परिपथ दूरर्शन (सी.सी.टी.वी) हैं जो सामान्य जन के लिए दूरदर्शन का क्षेत्र एवं उपयोगिता बढ़ाते हैं।

शैक्षिक दूरदर्शन, सम्प्रेषण तथा प्रसारण का एक प्रमुख साधन है। तकनीकी से दृष्टि से यह श्रव्य एवं दृश्य दोनों से दृश्य दोनों से युक्त है। शैक्षिक दूरदर्शन, राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा तैयार किये गये विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम को खाने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। शिक्षा के प्रत्येक स्तर की बाधाओं को दूर करने का यह एक प्रभावशाली साधन है। इसके द्वारा औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा का विकास संभव है। शैक्षिक दूरदर्शन के द्वारा सम्पूर्ण संसार को एक कक्षा का स्वरूप प्रदान किया जा सकता है एवं कक्षा को घर के स्वरूप में बदला जा सकता है। विकासशील देशों में

* अध्यापक, गणित, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार

शिक्षा के माध्यम के रूप में शैक्षिक दूरदर्शन के सम्भावित क्षेत्र मौजूद हैं। भारत में दूरदर्शन कार्यक्रमों के प्रसारण की सुविधा देश के ज्यादातर भागों में उपलब्ध है। भारत में दूरदर्शन जन सामान्य के लिए प्रभावी शिक्षा के माध्यम के रूप में और विशेषत: औपचारिक शिक्षा एवं दूरस्थ शिक्षा के लिए उपयोगी हो सकता है। दूरदर्शन पर दूरस्थ विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयीय शिक्षा संस्थान द्वारा निर्मित कार्यक्रमों को सप्ताह में दो दिन ज्ञानदर्शन चैनल पर केबल द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर इन्सैट 2-सी के द्वारा शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। दूरदर्शन को देश के ग्रामीण प्रौढ़ व्यक्तियों की साक्षरता और साक्षरता कार्यक्रमों के सफल संचालन के लिए प्रभावी माध्यम के रूप में जाना जाता है। यह जन सामान्य के मध्य सामाजिक जागरूकता और क्रियात्मक साक्षरता का निर्माण कर सकता है। मुख्यत: दूरदर्शन का प्रयोग मनोरंजन के साधन के रूप में होता है। दूरदर्शन के द्वारा विविध अनुभवों से जुड़े शैक्षिक अनुभवों को तो सामने लाता ही है, साथ ही साथ भावी जीवन के विविध दृश्यों को भी प्रस्तुत करता है जिससे दर्शक की बहुआयामी विचार शक्ति को बढ़ावा मिलता है। विशेषकर विद्यालयी छात्रों के विषय में इसे शैक्षिक अनुभव के संचार का सहायक एवं वैकल्पिक माध्यम के रूप में जाना जाता है।

शैक्षिक दूरदर्शन का विकास

सन् 1975 में सेटेलाइट इन्सट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरीमेंट साइट के माध्यम से लोगों को शिक्षित करने का प्रयास किया गया व सेटेलाइट टेलीविजन के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा देने हेतु सी.आई.ई.टी व एस.आई.ई.टी. की सथापना करते हुए उच्च शिक्षा हेतु शैक्षिक दूरदर्शन प्रसारण प्रारम्भ कया गया। इसके बाद सन् 2000 से प्रसार भारती व इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय के सम्मिलित प्रयासों से शिक्षा को पूर्णत: समर्पित शैक्षिक चैनल ज्ञानदर्शन का प्रसारण प्रारम्भ किया गया और 2003 में शैक्षिक चैलन ज्ञानदर्शन-2 (तकनीकी शिक्षा) व ज्ञानदर्शन-3 (कृषि शिक्षा) नामक चैनल प्रारम्भ किये गये। परन्तु शैक्षिक क्षेत्र की बढ़ती माँग व शैक्षिक प्रसारण को अधिक उद्देश्यपरक बनाने को दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार द्वारा इसरो के सहयोग से 20 दिसम्बर 2004 को एजुसैट (एजुकेशनल सैटेलाइट) प्रारम्भ किया गया। शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इस सैटेलाइट के माध्यम से 72 चैनलों के प्रसारण की योजना तैयार की गई थी।

पूर्व अध्ययनों की समीक्षा

शैक्षिक दूरदर्शन पर सम्पन्न हुए अध्ययन **शाह (1972)** द्वारा शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों की उपयोगिता के सम्बन्ध में सम्पन्न हुआ। अध्ययन विषय था ''दिल्ली संघ क्षेत्र के प्रथमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों में शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों की उपयोगिता'' पर यह प्रदर्शित हुआ कि शिक्षक एवं विद्यार्थीयों की शैक्षिक दूरदर्शन के प्रति सकारात्मक प्रवृत्ति पायी गई। केन्द्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान (1983), शैक्षिक प्रौद्यागिकी संस्थान (1984), केन्द्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान (1984), गोयल (1984), सिंह एवं उमारें (1986), तुमासूक (1990) ने अपने अध्ययनों में पाया कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि के लिए शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम प्रभावशाली है।

विद्यालय स्तर पर शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों की प्रभावशीलता पर अध्ययन एस. आई.टी.ई प्रोजेक्ट 1975 की स्थापना से विद्यालय शैक्षिक दूरदर्शन की प्रभावशीलता पर अध्ययन को प्रोत्साहन मिला। विद्यालय स्तरीय शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों के प्रभाव अध्ययन के लिए बहुत से सर्वेक्षण किये गये। प्रारंभिक स्तर पर ज्यादातर अध्ययन एस. आई.टी.ई. प्रोजेक्ट पर हुए। तत्पश्चात इस तरह के सर्वेक्षणों का विस्तार हुआ तथा राज्य शैक्षिक संस्थानों तक इसका फैलाव हुआ। शैक्षिक दूरदर्शन विद्यालय स्तरीय अध्ययनों को केन्द्रीय प्रधानता दी गयी। शैक्षिक दूरदर्शन प्रभावशीलता विद्यालयीन स्तर पर जो अध्ययन सम्पन्न हुए वह निम्न हैं- मोहन्ती एवं गिरी (1976), केन्द्रीय शिक्षा प्रौद्योगिकी संस्थान (1984), वाड (1984), मोहन्ती एवं मोहन्ती (1984), दोनेरिया (1988), जायसवाल (1988), मिश्रा (1993) द्वारा सम्पन्न अध्ययन विद्यालय स्तरीय शैक्षिक दूरदर्शन विषय क्षेत्र एवं सामान्य वृद्धिपरक कार्यक्रमों के सन्दर्भ में थे। इन अध्ययनों द्वारा परिणाम प्राप्त हुए कि शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों की विषय-वस्तु एवं प्रस्तुति बहुत अधिक उपयुक्त थी।

मिश्रा (1994), मलिक (1995), साहू एवं मुछाल (2000) से परिणामों में पाया कि विद्यार्थियों की उपलब्धि के संदर्भ में प्राइमरी स्तर तथा उच्च प्राइमरी स्तर पर शैक्षिक दूरदर्शन का प्रत्यक्ष दर्शन, प्रस्तुतीकरण उपलब्धि हेतु प्रभावी पाया गया। विद्यार्थियों के विकास के संदर्भ में उनकी शैक्षिक दूरदर्शन में प्रत्यक्ष विद्यार्थियों के विकास के संदर्भ में उनकी शैक्षिक दूरदर्शन में प्रत्यक्ष दर्शन के प्रति अभिवृत्ति प्रभावी थी।

अध्ययन का उद्देश्य

''मुक्त विद्यालयीय शिक्षा संस्थान के कक्षा X के गणित विषय के विद्यार्थियों की विभिन्न शिक्षण आव्यूहों द्वारा अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थियों की उपलब्धि के सन्दर्भ में प्रभावशीलता का अध्ययन करना।''

परिकल्पना

''मुक्त विद्यालयीय शिक्षा संस्थान के कक्षा X के गणित विषय के विभिन्न शिक्षण आव्यूहों द्वारा अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थियों की उपलब्धि के सन्दर्भ में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।''

न्यादर्श

वर्तमान शोध में राजकीय सर्वोदय कन्या विद्यालय, बी-ब्लाक, नन्द नगरी, दिल्ली-93 राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयीय शिक्षा संस्थान के अध्ययन केन्द्र पर पंजीकृत वर्ष 2007-08 सत्र के कक्षा 10 के गणित विषय के 80 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में लिया गया। 80 विद्यार्थियों को यादृच्छिक रूप से दो बराबर समूहों में बाँटा गया। अनुसंधान में दो शिक्षण विधियों को अलग-अलग समूहों के शिक्षण के लिए चुना गया है जो निम्न है:

समूह 1 - मुद्रित पाठ अध्ययन आव्यूह समूह,

समूह 2 - मुद्रित पाठ के साथ वीडियो पाठ अध्ययन आव्यूह समूह

शोध अभिकल्प

इस अध्ययन में एक समूह पूर्व-परीक्षण एवं पश्च-परीक्षण अभिकल्प में निम्न घटकों को लिया गया है:

0	X 1	0
समूह 1 पूर्व परीक्षण	मुद्रित पाठ अध्ययन समूह	पश्च परीक्षण
समूह 2 पूर्व परीक्षण	मुद्रित पाठ के साथ वीडियो पाठ अध्ययन समूह	पश्च परीक्षण

उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्यों के अध्ययन हेतु निम्न उपकरणों का प्रयोग किया गया: शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित मानदंड परीक्षण (सी.आर.टी)।

प्रदत्त संकलन एवं विश्लेषण

प्रत्येक समूह को उपचार से पूर्व शोधकर्त्ता द्वारा मानदंड परीक्षण (सी.आर.टी.) हेतु प्रशासित किया गया। प्रत्येक समूह को विभिन्न शिक्षण आव्यूह के अनुसार उपचार दिया गया। अनुसंधानकर्त्ता ने स्वयं एवं अन्य विषय विशेषज्ञों के साथ मिलकर निर्धारित विभिन्न शिक्षण आव्यूह द्वारा मानदंड परीक्षण (सी.आर.टी.) को प्रशासित कर प्रदत्तों का एकत्रीकरण किया। मूल्यांकन एवं फलांकन निर्धारित मानकों के अनुसार किये गये। प्रशासित उपकरण से सम्बन्धित शंकाओं का समाधान शोधकर्त्ता द्वारा किया गया।

परिणाम, विवेचना एवं निष्कर्ष

प्रदत्तों के एकत्रीकरण के पश्चात् उनका विश्लेषण किया गया। सम्बन्धित परिणामों को तालिका 1.1, 1.2 एवं 1.3 में दर्शाया गया है:

तालिका 1.1
शतांशमानों में अधिगमकर्त्ताओं की उपलब्धि को दर्शाने वाली तालिका

शतांशमान	शतांशमानों में विभिन्न शिक्षण आव्यूहों द्वारा अधिगमकर्त्ताओं की उपलब्धि	
	मुद्रित पाठ अध्ययन	मुद्रित पाठ के साथ वीडियो पाठ अध्ययन
P 10	37.00	38.00
P 20	43.25	43.83
P 25	44.21	44.50
P 30	47.25	47.64
P 40	48.64	49.50
P 50	54.50	55.50
P 60	58.83	59.50
P 70	60.83	61.17
P 75	61.83	62.00
P 80	63.50	64.50
P 90	74.50	76.50

तालिका दर्शाती है कि मुद्रित पाठ अध्ययन समूह वाले विद्यार्थियों के उपलब्धि प्राप्ताकों के शतांशमानों के अनुसार P 50 दर्शाता है कि 50% विद्यार्थी 54.50 अंक प्राप्त करते हैं। इसी समूह में P 80 दर्शाता है कि 20% विद्यार्थी 63.50 अंक प्राप्त करते हैं तथा P 90 दर्शाता है कि केवल 10% विद्यार्थी 74.50 अंक प्राप्त करते हैं। मुद्रित पाठ के साथ वीडियो पाठ अध्ययन वाले समूह के विद्यार्थियों के उपलब्धि प्राप्ताकों के शतांशमानों के अनुसार P 50 दर्शाता है कि 50% विद्यार्थी 55.50 अंक प्राप्त करते हैं। इसी समूह में P 80 दर्शाता है कि 20% विद्यार्थी 64.50 अंक प्राप्त करते हैं तथा P 90 दर्शाता है कि केवल 10% विद्यार्थी 74.50 अंक प्राप्त करते हैं

मुद्रित पाठ के साथ वीडियो पाठ अध्ययन वाले समूह के विद्यार्थियों के उपलब्धि प्राप्ताकों के शतांशमानों के अनुसार P 50 दर्शाता है कि 50% विद्यार्थी 55.50 अंक प्राप्त करते हैं। इसी समूह में P 80 दर्शाता है कि 20% विद्यार्थी 64.50 अंक प्राप्त करते हैं तथा P 90 दर्शाता है कि केवल 10% विद्यार्थी 76.50 अंक प्राप्त करते हैं।

तालिका के आधार पर दोनों समूहों का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि चारों समूहों में P 10 दर्शाता है कि दोनों समूहों के 90% विद्यार्थी इस परीक्षा को उत्तीर्ण कर लेते हैं लेकिन इनके अंकों में अन्तर है। मुद्रित पाठ अध्ययन समूह वाले विद्यार्थियों के उपलब्धि प्राप्तकों के शतांशमानों के अनुसार P 50 दर्शाता है कि 50% विद्यार्थी 55.50 अंक प्राप्त करते हैं। इस प्रकार प्रथम समूह की अपेक्षा द्वितीय समूह में विद्यार्थियों का शतांशमान 1.00 बढ़े हुए रूप में प्राप्त होता है। प्रथम समूह में P 80 दर्शाता है कि 20% विद्यार्थी 63.50 अंक प्राप्त करते हैं जबकि द्वितीय समूह में 20% विद्यार्थी 64.50 अंक प्राप्त करते हैं। इस प्रकार प्रथम समूह की अपेक्षा द्वितीय समूह में विद्यार्थियों का P 80 शतांशमान 1.00 बढ़े हुए रूप में प्राप्त होता है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि केवल मुद्रित पाठ अध्ययन आव्यूह की अपेक्षा मुद्रित पाठ के साथ वीडियो पाठ अध्ययन आव्यूह अधिक प्रभावशाली है क्योंकि मुद्रित सामग्री में विषय वस्तु को प्रत्यक्ष रूप से उदाहरण देकर स्पष्ट नहीं किया जा सकता है जबकि वीडियो पाठ में विभिन्न उदाहरणों का प्रत्यक्षीकरण संभव है।

तालिका द्वारा यह भी स्पष्ट है कि मुद्रित पाठ अध्ययन आव्यूह की अपेक्षा मुद्रित पाठ के साथ वीडियो पाठ अध्ययन आव्यूह अधिक प्रभावशाली है क्योंकि शतांशतीय स्तर पर विद्यार्थियों को बढ़े हुए प्राप्तांक प्राप्त होते हैं। इससे प्रदर्शित होता है कि यदि

विद्यार्थियों को विभिन्न सामूहिक शिक्षण आव्यूहों से शिक्षण कराया जाता है तो विद्यार्थियों में प्रकरणों को समझने की क्षमता का विकास होता है। विद्यार्थी प्रकरणों को पहले से बेहतर समझ पाते हैं जिसका परिणाम उनकी उपलब्धि में वृद्धि से प्रदर्शित होता है।

तालिका 1.2

विभिन्न समूहों के अन्तर्गत अधिगमकर्त्ताओं की उपलब्धि को माध्य, मानक विचलन एवं मानक त्रुटि माध्य के रूप में दर्शाने वाली तालिका

आव्यूह	माध्य	कुल संख्या	मानक विचलन	मानक त्रुटि माध्य
मुद्रित पाठ अध्ययन	54.95	40	14.24	2.25
मुद्रित पाठ के साथ वीडियो पाठ अध्ययन	60.88	40	14.34	1.95

तालिका 1.3

विभिन्न समूहों के अन्तर्गत अधिगमकर्ताओं की उपलब्धि को टी-मान के रूप में दशाने वाली तालिका

आव्यूह	माध्य	मानक विचलन	Std. Error Mean	t	Df	Level of Signifi-cance
मुद्रित पाठ अध्ययन एवं मुद्रित पाठ के साथ वीडियो पाठ अध्ययन	5.92	18.44	2.91	2.03	39	.05

तालिका 1.3 के अवलोकन के आधार पर समूह 1 से 2 के अधिगमकर्ताओं की उपलब्धि में स्वातंत्र्य कोटि 39 के साथ 0.01 के विश्वास स्वर पर सार्थक अन्तर पाया गया। इसलिए निर्धारित की गयी परिकल्पना ''मुक्त विद्यालयीय शिक्षा संस्थान के

कक्षा X के गणित विषय के विभिन्न शिक्षण आव्यूहों द्वारा अध्ययन के पाश्चात् विद्यार्थियों की सम्पूर्ण उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' निरस्त की जाती है।

परिणाम

मुक्त विद्यालयीय शिक्षा संस्थान के कक्षा X के गणित विषय के विभिन्न शिक्षण आव्यूहों जैसे मुद्रित पाठ अध्ययन, मुद्रित पाठ के साथ वीडियो पाठ अध्ययन समूहों के अन्तर्गत अधिगमकर्त्ताओं की उपलब्धि में सार्थक अन्तर होता है।

शिक्षण पद्धति में वीडियो पाठ अध्ययन एवं दूरदर्शन की भूमिका

वीडियो पाठ अध्ययन एवं शैक्षिक दूरदर्शन को निम्न दृष्टि से कक्षा आधारित शिक्षण के सहायक के रूप में लाया जा सकता है।

गुणवत्ता में सुधार हेतु

शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों में सामान्यतया ऐसे पाठ्यपुस्तक सूची विशेषज्ञ, कार्यक्रम रचनाकार, दृश्य-श्रव्य कलाकार एवं कार्यक्रम निर्माण तथा सृजन विशेषज्ञों के गहन प्रयासों को शामिल किया जाता है। अत: अन्य संस्थानों द्वारा निर्मित शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों में गुणवत्ता बनी रहती है।

योजनाकार के रूप में दूरदर्शन

कक्षा दूरदर्शन शिक्षाविदों को पाठ्य विकल्पों पर पुनर्विचार एवं वर्तमान अध्यापकों तथा प्रविधि के मूल्यांकन के लिए भी प्रेरित करता है। यह अध्यापकों एवं योजनाकारों को योजना हेतु स्रोत प्रदान करता है। शैक्षिक दूरदर्शन की मदद से शैक्षिक क्षेत्र में विकास से सम्बन्धित विविध विचारों को आसानी से प्रसारित किया जा सकता है।

बालकों के अनुभवों को विस्तार देने वाले माध्यम के रूप में दूरदर्शन

कक्षा में दूरदर्शन को अकसर विश्व झरोखा की संज्ञा दी जाती है। शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों से विद्यार्थियों को समय व स्थान की सीमाओं को लांघने में मदद मिलती है और समाज को नवीन और अलग नजरिए से देखने में मदद मिलती है। शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों के द्वारा उपभोग एवं आर्थिक ढ़ांचे के विविध प्रतिमान, वैकल्पिक धार्मिक स्वरूप, सांस्कृतिक प्रतिमान एवं लैंगिक भूमिका के आदर्श उपलब्ध होते हैं।

पर्यावरण सतर्कता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के माध्यम के रूप में दूरदर्शन

प्राथमिक विद्यालयी विद्यार्थियों में पर्यावरण सतर्कता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के माध्यम के रूप में दूरदर्शन एक उपकरण के रूप में प्रयुक्त होता है। यह विद्यार्थियों के मध्य परस्पर सहभागिता एवं सम्बद्ध सार्वभौमिक अनुभव प्रदान करता है। वह उन्हें स्वयं के तथा पर्यावरण के बारे में अपने अहसासों को परखने का मौका देता है। यह विद्यार्थियों की बाह्य दृष्टि बढ़ाता है। विज्ञान एवं तकनीकी के बारे में जिज्ञासा उत्पन्न करता है।

शैक्षिक अवसरों में समानता लाने वाले माध्यम के रूप में दूरदर्शन

दूरदर्शन की सहायता से सभी विद्यार्थियों के शैक्षिक अवसरों में समानता लायी जा सकती है। दूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों के अध्ययनकर्ता भी उसी तरह से शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों से लाभान्वित हो सकते हैं जिस तरह से शहरी छात्र होते हैं। शैक्षिक दूरदर्शन शिक्षा के माध्यम के रूप में विद्यालय को सामुदायिक कल्याण एवं शिक्षा का केन्द्र बनाने में सहायता प्रदान करता है।

शैक्षिक प्रणाली में मितव्ययता लाने वाले माध्यम के रूप में दूरदर्शन

दूरदर्शन बाल शिक्षा में बेहतर अवसर प्रदान करता है जैसे अधिक जनसंख्या पर प्रति इकाई लागत कम खर्चीले साधनों के कारण दूसरे शैक्षिक माध्यमों की तुलना में कम होती है। शैक्षिक दूरदर्शन शिक्षा के अन्य दूसरे साधनों के साथ जोड़कर विद्यार्थियों से बेहतर परिणाम प्राप्त करने में भी सहायता प्रदान करता है। भारत जैसे देश में जहाँ शिक्षा के भौतिक संसाधन सीमित हैं, बाल शिक्षा की दृष्टि से शैक्षिक दूरदर्शन द्वारा शिक्षा के अच्छे अवसर प्राप्त किये जा सकते हैं।

दूरस्थ शैक्षिक कार्यक्रमों के अति सरल एवं प्रभावी माध्यम के रूप में दूरदर्शन

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली द्वारा शिक्षण के सन्दर्भ में शैक्षिक दूरदर्शन का संचालन अति सरल है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली नियोजन, क्रियान्वयन एवं संचालन में समस्यायें कुछ सीमा तक वीडियों अनुदेशन एवं दूरदर्शन द्वारा शिक्षण कर हल की जा सकती हैं।

शैक्षिक दूरदर्शन अध्यापक आश्रितता को कम करने वाले माध्यम के रूप में

शैक्षिक दूरदर्शन अधिगमकों में स्व-अध्ययन की आदत को विकसित करता है। शैक्षिक दूरदर्शन की सहायता से विद्यार्थी स्वयं के प्रयास से सीखता है अर्थात शिक्षित होता है। शैक्षिक दूरदर्शन के माध्यम से नये ज्ञान, विचार एवं अवधारणाओं को सीखने में उसे शिक्षक की कम से कम आवश्यकता महसूस होती है।

शिक्षण पद्धति में वीडियो पाठ अध्ययन एवं शैक्षिक दूरदर्शन की प्रमुख चुनौतियाँ

शैक्षिक दूरदर्शन की सफलता के मार्ग में तकनीकी पक्ष से अधिक मानवीय चुनौतियाँ विद्यमान हैं जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं

- शैक्षिक दूरदर्शन के कार्यक्रमों का निर्माण
- शैक्षिक दूरदर्शन के कार्यक्रमों का आदान-प्रदान
- जनसमुदाय के बीच चैनल्स के प्रति जागरूकता
- स्थानीय स्तर पर मेन्टीनेन्स एवं सहयोग
- शैक्षिक संस्थाओं की शैक्षिक दूरदर्शन के कार्यक्रमों के निर्माण में सहभागिता एवं आदान-प्रदान
- कार्यक्रमों के निर्माण से जुड़ी संस्थाओं एवं प्रसारण संस्थाओं के बीच समन्वय एवं सहयोग
- तकनीकी व्यवस्था एवं प्रसारण प्रबंधन
- वित्तीय प्रबंधन
- शैक्षिक दूरदर्शन का निर्धारित उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में सतत मूल्यांकन।

शैक्षिक दूरदर्शन की सफलता इन चुनौतियों का सामना करने में निहित है। इनका सामना करने के लिए विभिन्न शिक्षण प्रशिक्षण संस्थान वह शिक्षक प्रशिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका है।

वर्तमान परिदृश्य में सबसे बड़ी चुनौती राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने तथा बदलती परिस्थितियों के अनुसार उन्हें शैक्षिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने की है। परन्तु इस चुनौती का सामना मात्र औपचारिक व्यवस्था के माध्यम से करना

संभव नहीं है। इसके लिए शिक्षा देने के वैकल्पिक स्रोतों की पहचान व उनके उपयोग की संभावनाएँ तलाशना महत्वपूर्ण है। इसी क्रम में शैक्षिक दूरदर्शन एक प्रमुख विकल्प के रूप में कार्य कर रहा है। शैक्षिक दूरदर्शन को सफल बनाने व उद्देश्यों की प्राप्ति में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान एवं अध्यापक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। शिक्षक राष्ट्र को भविष्य देते हैं तथा शैक्षिक दूरदर्शन इस भविष्य को शिक्षा देने का एक सशक्त माध्यम है।

संदर्भ

बुच, एम.बी. ''सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन, एम.एस.यूनिवर्सिटी, बड़ौदा, 1994

बुच, एम.बी. ''सकेण्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन, एम.एस.यूनिवर्सिटी, बड़ौदा, 1979

बुच, एम.बी. ''थर्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन, (1978-83) एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

बुच, एम.बी. (1991) : ''फोर्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन, वोल्यूम-1, एन.सी.ई.आर.टी,, नई दिल्ली।

सी.आई.ई.टी. ए स्टडी टू एक्सेस द नीड आफ द प्राइमरी स्कूल चिल्ड्रन आफ उड़ीसा फार इटीवी स्पोर्ट, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली

सी.आई.ई.टी., टेलीकांफ्रेन्सिंग एनुअल रिपोर्ट, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली, 1993

सी.आई.ई.टी. रिपोर्ट आन ई.टी.वी. यूटिलाईजेशन इन उड़ीसा फार द पीरियड इंडिंग दिसम्बर 1983, मियोग्राफ्ड, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 1984

दोनेरिया ए., ए स्टडी आफ जनरल एजुकेशनल टेलीविजन प्रोग्राम्स इन टर्म्स आफ देयर कांटेंट्स प्रेजेन्टेशन, स्टूडेन्ट्स रिएक्संस एंड इफैक्टिवनैस, अन पब्लिस्ड् एम. एड. डिजरटेशन, डी.ए.वी.पी. इन्दौर, 1988

मलिक, पी. इव्लूऐशन आफ एजुकेशनल टेलीविजन प्रोग्राम्स फार उड़िया मिडियम प्राइमरी स्कूल चिल्ड्रन इन टर्म्स आफ प्रजेन्टेशन : एचिवमेंट विद एंड विद आउट टाकसैफ; स्कूल एचिवमेंट एंड एटिट्यूड टूवार्ड्स एजुकेशनल टेलीविजन, अनपब्लिस्ड पी-एच.डी. थीसिस, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, 1995

मिश्रा, जी. इवाल्यूऐशन आफ एजुकेशनल टेलीविजन प्रोग्राम फार प्राइमरी चिल्ड्रन इन टर्म्स्ट आफ ऐचिवमेंट विद एंड विदआउट टाकबैक एंड एटिट्यूट टूवार्डस एजुकेशनल टेलीविजन, अनपब्लिस्ड, एम.एड. डिजरटेशन, डी.ए.वी.पी., इन्दौर, 1994

मोहन्ती, जे. एंड गिरि, ए., ए स्टडी आन स्कूल ब्राडकास्टिंग प्रोग्राम्स इन स्टडीज आन एजुकेशनल टेलीविजन एंड रेडियो प्रोग्राम्स, पब्लिकेशन नं. 19, एजुकेशनल टेक्नॉलाजी सैल, भुवनेश्वर, 1976

मोहन्ती, जे. एंड मोहन्ती, पी.सी., ए स्टडी आफ द इम्पेक्ट आफ एस.आई.टी.ई. आन अटेंडैंस एंड इनरोलमेंट इन प्राइमरी स्कूल एस.सी.ई.आर.टी., उड़ीसा, 1984

फुटेला आर.एल., ए स्टडी आफ यूटिलाईजेशन एंड काम्प्रेहेंसिबिलिटी आफ एस.टी.वी. प्रोग्राम इन दिल्ली, मिमियोग्राफ्ड सी.आई.ई.टी., एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 1980

तूमासूक, सी.टी., यूज आफ टेलीविजन एज ए मीडियम फोर यंग चिल्ड्रन्स एजुकेशन इन थाइलैण्ड, डिजेरटेशन एवस्ट्रक्ट्स इंटरनेशनल, वाल्यूम-50, नं. 4, 1989

वाड बी., ए स्टडी आफ द स्कोप आफ कम्यूनिकेशन मिडिया एच एज रेडियो टेलीविजन इन एजुकेशन एट हाईस्कूल लेवल इन महाराष्ट्र स्टेट, अन पब्लिस्ड पी-एच.डी. (एजुकेशन) थीसिस, मुंबई यूनिवर्सिटी, 1984

साहू, पी.के., एवं मूछाल, एम.के. (2000), राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय के दूरस्थ शिक्षण अधिगम उपगमों की उपयुक्तता का अध्ययन, भारतीय आधुनिक शिक्षा, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, वर्ष 19, अंक-2, अक्टूबर 2000

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 1, अप्रैल 2011

शोध टिप्पणी/संवाद

छात्राध्यापकों के पर्यावरणीय आचारशास्त्र के ज्ञान एवं व्यवहार का अध्ययन

अनुपम सिंह* और **सुनील सिंह****

वर्तमान विश्व के समक्ष पर्यावरण असंतुलन की समस्या का समाधान बहुत बड़ी चुनौती है। इसके समाधान हेतु सन् 1970 के आसपास से ही पर्यावरण शिक्षा को विद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल करने का प्रयास चल रहा है। परन्तु माननीय उच्च न्यायालय के आदेश के बाद ही यह प्रारम्भिक रूप से विद्यालयों और कालेजों की पाठ्यपुस्तकों में शामिल किया जा सका है। समाज में शिक्षा का उद्देश्य मानव व्यवहार को वांछित स्वरूप प्रदान करना है। सन् 1978 के तिबिलिसी सम्मेलन में, पर्यावरण शिक्षा के लिए निर्धारित प्रमुख उद्देश्य–जागरूकता, ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल, प्रतिभा के अनुसार पर्यावरण शिक्षा की ऐसी सर्वसम्मत प्रक्रिया होनी चाहिए, जिससे विद्यार्थियों में पर्यावरण के प्रति इस तरह से जागरूकता उत्पन्न हो, जिससे वे मानव और प्रकृति के बीच सम्बंधों की पहचान और उन पर पुनर्विचार कर सकें, ताकि पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान और पर्यावरण संरक्षण हेतु उनमें अभिवृत्ति विकसित हो तथा इस प्रयोजन हेतु कौशल प्राप्त कर लें, तब वे पर्यावरण संरक्षण हेतु सदैव तत्परता से प्रतिभाग करेंगे (अमिमिया, 1997)।

पर्यावरण शिक्षा की प्रभावकारिता के अध्ययन हेतु किये गये अनुसंधानों में गुप्ता (1982), शहनवाज (1990), गोपालकृष्णन (1992), कौर (1992), सीमा (1997), मिश्रा (1998), आनन्द (2002), के अनुसार जनमानस में पर्यावरण शिक्षा से पर्यावरण एवं संबंधित समस्याओं के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई है। पटेल (1997) ने छात्राध्यापकों पर पर्यावरणीय जागरूकता कार्यक्रम के प्रभाव का अध्ययन करते हुए

* शोधछात्र, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** रीडर, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पाया कि ऐसे कार्यक्रम पर्यावरणीय जागरूकता बढ़ाने में प्रभावी है। कौशिक (2002) ने भी छात्राध्यापकों की पर्यावरणीय जागरूकता और अभिवृत्ति के तुलनात्मक अध्ययन में पाया कि दोनों के मध्य धनात्मक और सार्थक सम्बंध हैं।

परन्तु पाठक (2008) के अनुसार, अभी तक दी जा रही पर्यावरण शिक्षा कदापि पर्याप्त नहीं कही जा सकती है क्योंकि इससे विद्यार्थियों में ऐसी पर्यावरणीय जागरूकता नहीं उत्पन्न हो पा रही है, जिससे हमारे दैनिक जीवन में प्रत्येक पग पर व्यावहारिक रूप में आवश्यकता पड़ती है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि पर्यावरण के प्रति जानकारी मात्र हो जाने से पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य पूरे नहीं होंगे, इसके लिए पर्यावरणीय शिक्षा के साथ आचार की शिक्षा को भी जोड़ना होगा। इस विचार को आज विश्वव्यापी मान्यता मिल चुकी है।

पर्यावरणीय आचारशास्त्र

पर्यावरणीय आचारशास्त्र, पर्यावरण के प्रति सार्वभौमिक नैतिक कर्त्तव्यों एवं मूल्यों का विज्ञान है (व्यास, 1996), पर्यावरणीय आचारशास्त्र, पर्यावरणयुक्त व्यवहार मूल्य एवं मानदण्ड है। यह एक प्रकार से पर्यावरण शिक्षा का आचारशास्त्रीय उपागम है। यह इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाली प्रत्येक वस्तु का पूर्ण त्याग करे; जीवन में भोग की जगह त्याग, प्रवृत्तिवाद की जगह निवृत्तिवाद, असंयम की जगह संयम, भौतिकता की जगह आध्यात्मिकता को अपनाये; किसी का भी अंधानुकरण छोड़कर, स्वविवेक से सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति नितकारी व्यवहार अपनाये।

अत: पर्यावरण शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों में ऐसे ही आचारशास्त्र का विकास करना है, जिससे वे अपने दैनिक जीवन की हर छोटी-बड़ी दुविधापूर्ण परिस्थिति में आचारशास्त्र की दृष्टि से सही-गलत की पहचान करते हुए उचित व्यवहार करने की आदत विकसित कर सकें। अत: पर्यावरण शिक्षा के द्वारा लोगों में पर्यावरणीय कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व का बोध विकसित करना चाहिये। उनमें इस प्रकार का दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए, जिससे उनके मन एवं मस्तिष्क में पर्यावरण के प्रति वैचारिक एवं व्यावहारिक, दोनों ही स्तरों पर परिवर्तन सुनिश्चित किया जा सके। वर्तमान परिस्थिति में ज्ञानात्मक स्तर पर मात्र शिक्षा प्रदान करना पर्याप्त नहीं है, बल्कि पर्यावरण शिक्षा के आचरण, व्यवहार, चाल-चलन, प्रथाओं तथा परम्पराओं और तीज-त्यौहारों में, दिनचर्या में उतरना आवश्यक है।

अत: आज जब शिक्षा के सभी स्तरों पर पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम लागू हो चुके हैं तो क्या शिक्षण संस्थाओं में दी जा रही पर्यावरण शिक्षा विद्यार्थियों के पर्यावरणीय मूल्यों

पर लाभदायक प्रभाव डाल रही है? प्रस्तुत शोधपत्र में शिक्षक-शिक्षा में प्रशिक्षणरत विद्यार्थियों में (छात्राध्यापकों) के संदर्भ में इस प्रश्न का उत्तर जानने का प्रयास किया गया है। विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में, छात्राध्यापकों द्वारा पर्यावरणीय नैतिकता के अनुरूप परिस्थितियों की पहचान क्षमता एवं उसके अनुरूप उनके व्यवहार के अध्ययन की अत्यंत आवश्यकता है। इसी संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन पूर्ण किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य है:

1. छात्राध्यापकों द्वारा पर्यावरणीय आचारशास्त्र के अनुसार पर्यावरणीय परिस्थितियों को पहचानने की क्षमता का अध्ययन करना।
2. दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थितियों में, छात्राध्यापकों के व्यवहार का पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से अध्ययन करना।

शोध अभिकल्प

प्रस्तुत शोधकार्य विवरणात्मक अनुसंधान के अंतर्गत सर्वेक्षण अनुसंधान है।

जनसंख्या एवं प्रतिदर्श

प्रस्तुत अध्ययन की जनसंख्या में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सत्र 2008-2009 के समस्त छात्राध्यापक थे। इनमें से मात्र 40 छात्राध्यापकों का प्रतिदर्श के रूप में चयन किया गया।

मापन उपकरण एवं उसका प्रशासन

प्रस्तुत शोधकार्य हेतु सिंह एवं सिंह (2008) द्वारा निर्मित ''पर्यावरण आचार सर्वेक्षण प्रश्नावली'' का प्रयोग किया गया। इसमें पर्यावरण प्रदूषण के आठ पक्षों में से वायु प्रदूषण से संबंधित 9, जल प्रदूषण से संबंधित 6, ध्वनि प्रदूषण से संबंधित 6, रेडियोएक्टिव प्रदूषण के 2, मृदा प्रदूषण से संबंधित 3, ऊर्जा संरक्षण से संबंधित 9, जैव विविधता से संबंधित 13, अपशिष्ट प्रबंधन से जुड़े 14 परिस्थितियों सहित तथा कुल मिलाकर 62 परिस्थितियाँ दी गई हैं (विस्तृत रूप तालिका-1 में प्रस्तुत किया गया है)। इन्हीं पर छात्राध्यापकों की प्रतिक्रिया ली गई। छात्राध्यापकों से इन पर्यावरणीय परिस्थितियों का मूल्यांकन कर सर्वप्रथम यह निश्चय करने को कहा गया कि क्या ये परिस्थितियाँ पर्यावरणीय आचार शास्त्र के अनुरूप है अथवा नहीं? पुनः यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया कि इन परिस्थितियों में वे किस तरह का व्यवहार करते हैं। छात्राध्यापकों ने

दोनों बार अपनी प्रतिक्रिया हाँ, अनिश्चित, नहीं के कालम में सही का चिन्ह (✓) लगाकर दिया।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रस्तुत अध्ययन के दोनों उद्देश्य की प्राप्ति हेतु 'पर्यावरणीय आचार सर्वेक्षण प्रश्नावली' को प्रशासन द्वारा प्राप्त आँकड़ों की आवृत्ति एवं प्रतिशत को दो सारिणी (तालिका 1 एवं तालिका 2) में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही प्रश्नावली के प्रत्येक परिस्थिति पर प्राप्त छात्राध्यापकों की प्रतिक्रियाओं पर X^2 मान भी तालिका 1 एवं 2 में प्रस्तुत है। प्रश्नावली के अंतर्गत दिये गये पर्यावरण के आठ क्षेत्रों से संबंधित परिस्थितियों पर प्राप्त आँकड़ों का औसत भी, क्रमशः प्रत्येक पर्यावरणीय परिस्थिति हेतु चिन्हित क्षेत्र के उपरान्त प्रस्तुत किये गये हैं।

अध्ययन की प्रस्तुति सुविधा की दृष्टि से वर्तमान अंश के अन्तर्गत आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या क्रमशः उद्देश्यवार प्रस्तुत की गई है–

1. छात्राध्यापकों द्वारा पर्यावरणीय आचारशास्त्र के अनुसार पर्यावरणीय परिस्थिति को पहचानने की क्षमता का अध्ययन–

अध्ययन के प्रथम उद्देश्य से सम्बन्धित आँकड़े तालिक–1 में प्रस्तुत किये गये हैं–

तालिका–1

छात्राध्यापकों द्वारा पर्यावरणीय आचारशास्त्र के अनुसार, पर्यावरणीय परिस्थिति को पहचानने की क्षमता

क्र. सं.	परिस्थितियाँ	पर्यावरणीय नैतिकता के अनुरूप			
	प्रदूषण	**हाँ**	**अनिश्चित**	**नहीं**	**X^2**
	वायु प्रदूषण				
1.	परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ने के कारण स्थान की कमी हो रही है। इसलिए हम वृक्षों एवं बागीचों को काटकर स्थान का उपयोग कर लेते हैं।	.00 (00)	.02 (8)	.08 (32)	105.0
2.	तत्काल वायुमण्डल में किसी वस्तु को जलाने का दुष्प्रभाव पता नही चलता। अतः कचड़ा, घास–फूस आदि जला देते हैं।	.20 (8)	.00 (00)	.80 (32)	105.05

क्रमशः

3.	फ्रिज इस्तेमाल करने के लिए टैक्स नहीं लगता, अत: अवसर मिलने पर पूरा-पूरा इस्तेमाल करते हैं।	.10	.30 (4)	.60 (12)	38.39 (24)
4.	आपके गंतव्य तक सार्वजनिक परिवहन के साधन उपलब्ध हैं, फिर भी सुविधा की दृष्टि से अपने निजी वाहन का ही प्रयोग करते हैं।	.20 (8)	.10 (4)	.70 (28)	62.63
5.	घर पर मोटर-वाहन उपलब्ध है, फिर भी कम दूरी की यात्रा साइकिल से ही तय करते हैं।	.80 (00)	.00 (8)	.20 (32)	105.05
6.	गोघृत तिलोदन आदि वायु को शुद्ध करने वाली वस्तुएं हैं। इसलिए आप इनसे हवन करते हैं।	.60 (24)	.20 (8)	.20 (8)	32.33
7.	आप जानते हैं कि वृक्षारोपण, वायुप्रदूषण रोकने का एक उपाय है। अत: आप वृक्ष लगाते हैं।	.90 (36)	.00 (00)	.10 (4)	147.48
8.	आप जानते हैं कि जैव अपशिष्टों को जलाने से वायुप्रदूषण में वृद्धि होती है, फिर भी आप इधर-उधर अपशिष्टों को जलाते रहते हैं।	.10 (4)	.10 (4)	.80 (32)	98.99
9.	आप मच्छरदानी की उपयोगिता से भली-भाँति परिचित हैं, फिर भी मच्छरों से बचाने के लिए मास्किटों क्वायल/लिक्विड मास्किटों डिस्ट्रायर का प्रयोग करते हैं।	.20 (8)	.00 (00)	.80 (32)	105.05
	औसत	.75	.10	.15	79.28
	जल प्रदूषण				
1.	आप जानते हैं कि फ्लश वाले शौचालयों में जल की अधिक हानि होती है, फिर भी आप इसी प्रकार के शौचालय का प्रयोग करना चाहते हैं।	.00 (00)	.10 (4)	.90 (36)	147.48

क्रमश:

2.	आप जानते हैं कि नदी, तालाब के समीप शौच वर्जित माना गया है, फिर भी खुले में शौच जाना हो, तो नदी, तालाब के समीप ही शौच करते हैं।	.00 (00)	.00 (00)	1.00 (40)	136.02
3.	पूजन सामग्री को सामान्य कूड़े में फेंकना अनुचित समझा जाता है। अत: पूजा के फूल तथा अन्य पूजन सामग्री को आप नदी/तालाब में विसर्जित करते हैं।	.20 (8)	.00 (00)	.80 (32)	105.05
4.	आप जानते हैं कि आपके क्षेत्र में पानी की कमी है, फिर भी आपने प्रयुक्त जल के पुन: उपयोग का प्रयास कभी नहीं किया है।	.30 (12)	.00 (00)	.70 (28)	74.75
5.	आप जानते हैं कि जल संरक्षण आवश्यक है। अत: आप अनाज/सब्जी आदि धुलने के बाद निकले पानी को पौधों में डाल देते हैं।	.90 (36)	.00 (00)	.10 (28)	147.48
6.	आप जानते हैं, कि साबुन/शैम्पू आदि में खतरनाक रसायन होते हैं। अत: आप नहाते समय, इनका प्रयोग बहुत कम करते हैं।	.70 (28)	.00 (00)	.30 (12)	74.75
	औसत	.83	.02	.15	114.67
	ध्वनि प्रदूषण	हाँ	अनिश्चित	नहीं	
1.	आप जानते हैं कि रेडियो, टेप आदि मनोरंजन के साधनों को धीमे बजाकर ध्वनि प्रदूषण में कुछ कमी लायी जा सकती है, फिर भी आप इन्हें तेज आवाज में बजाने के आदी हैं।	.10 (4)	.00 (00)	.90 (36)	147.48
2.	सामूहिक कीर्तन, भजन व अखण्ड पाठ जैसे कार्यक्रमों में ऊंची आवाज में लाउड-स्पीकरों का उपयोग करते हैं।	.00 (00)	.00 (00)	1.00 (40)	136.02

क्रमश:

3.	आप जानते हैं कि तेज हॉर्न बजाते रहने से ध्वनि प्रदूषण होता है। अत: आप ऐसा नहीं करते हैं।	1.00	.00 (40)	.00 (00)	136.02 (00)
4.	आपके द्वारा आयोजित समारोह में डीजे (D.J.) से अगल-बगल के लोगों को असुविधा होती है, फिर भी आप इनकी व्यवस्था रखते हैं।	.10 (4)	.20 (8)	.70 (28)	62.63
5.	आप जानते हैं कि विवाह आदि समारोह में लाइट, बैंड, आतिशबाजी आदि न होने पर समारोह की भव्यता कम हो सकती है फिर भी आप अपने घर के समारोह में सादगी से काम करते हैं।	.70 (28)	.10 (4)	.20 (8)	62.63
6.	आप जानते हैं कि दीपावली आदि पर्व में रात्रि 10 बजे के बाद आतिशबाजी प्रतिबंधित तो है, पर कोई रोकता नहीं, अत: त्यौहारों पर मनचाही अतिशबाजी करते हैं।	.10 (4)	.00 (00)	.90 (36)	147.48
	औसत	.86	.06	.08	126.15
	रेडियोऐक्टिव प्रदूषण				
1.	यदि हम ऊर्जा संरक्षण करें तो हमारे पास उपलब्ध स्रोत हमारे लिए पर्याप्त हैं, परन्तु और अधिक उपभोग के लिए आप परमाणु ऊर्जा के विकल्प को आवश्यक समझते हैं।	.40 (16)	.20 (8)	.40 (16)	8.08
2.	आप जानते हैं कि परमाणु विस्फोट हानिकारक है, फिर भी भारत को सुपर पावर बनाने के लिए आप परमाणु परीक्षणों का समर्थन करते हैं।	.20 (8)	.10 (4)	.70 (28)	62.63
	औसत	.55	.15	.30	24.75

क्रमश:

	मृदा प्रदूषण				
1.	आप मानते हैं कि किसी भूमि का स्वामित्व आपको अधिकार देता है कि आप उस भूमि का जैसा चाहें उपभोग करें।	.10 (4)	.00 (00)	.90 (36)	147.48
2.	आप गड्ढा खोदकर कम्पोस्ट खाद तैयार करना जानते हैं, फिर भी घर एवं मुहल्ले से निकलने वाले अपशिष्टों से कम्पोस्ट तैयार करने में भी पहल नहीं करते हैं।	.20 (8)	.00 (00)	.80 (32)	105.05
3.	आप जैव अपघटित न होने वाले अपशिष्ट पदार्थों को पहचानते हैं। अत: आप उन्हें जमीन में न दबा कर कबाड़ी को बेच देते हैं।	.70 (28)	.20 (8)	.10 (4)	62.63
	औसत	.80	.06	.14	99.96
	संरक्षण	हाँ	अनिश्चित	नहीं	
	ऊर्जा संरक्षण				
1.	कपड़े चाहे अधिक धुलने हों या कम, आप वांशिग मशीन का उपयोग ही उपयुक्त मानते हैं।	.00 (00)	.00 (00)	.100 (40)	136.02
2.	पानी गर्म करने में ऊर्जा व्यय होती है, फिर भी सर्दियों में आप गर्म पानी से ही स्नान करना चाहते हैं।	.20 (8)	.10 (4)	.70 (28)	62.63
3.	कक्षा में लाईट, पंखा का स्विच बंद करना चपरासी का काम है। आप कक्षा से निकलते समय लाईट, पंखा इत्यादि बंद नहीं करते हैं।	.10 (4)	.00 (00)	.90 (36)	147.48
4.	आप जानते हैं कि कोई सूचना एक ही पेपर पर लिख कर सभी को सूचित करने से कागज की बचत होती है। परन्तु फिर भी अलग लिफाफे में सूचना प्राप्त कर आप गौरवान्वित महसूस करते हैं।	.10 (4)	.00 (00)	.90 (36)	147.48

क्रमश:

5.	पेज की कोई कमी नहीं होने पर भी आप दोनों तरफ फोटोकापी/ प्रिंट लेकर/ लिखकर पेज की बचत करते हैं।	.90 (36)	.00 (00)	.10 (32)	147.48
6.	आप जानते हैं सी.एफ.एल. उपयोग करने से बिजली की बचत होती है। परन्तु फिर भी आप बल्ब/ट्यूब्लाईट जलाते हैं।	.20 (8)	.00 (00)	.80 (32)	105.05
7.	पंखा चलाने का कोई अतिरिक्त शुल्क नहीं देना पड़ता है इसलिए आप कपड़ा सुखाने के लिए पंखा चलाकर कमरा बंद कर देते हैं।	.00 (00)	.00 (00)	.10 (40)	136.02
8.	किराये के बाद अलग से बिजली का बिल नहीं देना पड़ता है, इसलिए आप कपड़ा सुखाने के लिए पंखा चलाकर कमरा बंद कर देते हैं।	.00 (00)	.00 (00)	1.00 (40)	136.02
9.	यह जानते हुए कि ऊर्जा का संरक्षण आवश्यक है। आप कमरे में ठंड से बचने के लिए हीटर जलाये रखते हैं।	.10 (4)	.10 (4)	.80 (32)	98.99
	औसत	.88	.03	.09	136.39
	जैव विविधता संरक्षण				
1.	आप मानते हैं कि प्रकृति के समस्त सजीव और निर्जीव मनुष्य द्वारा उपभोग होने के लिए ही निर्मित किये गये हैं। अत: आप जैसा चाहें उपभोग कर सकते हैं।	.20 (8)	.10 (4)	.70 (28)	62.63
2.	आप जानते हैं कि वृक्ष हमारे जीवन के लिए आवश्यक हैं। अत: आप दैनिक जीवन में लकड़ी के उपयोग को कम कर अन्य विकल्पों को प्रयोग करते हैं।	.70 (28)	.10 (4)	.20 (8)	62.63

क्रमश:

3.	आप अपनी जीवन शैली ऐसी अपनाना चाहते हैं ताकि आपकी भावी पीढ़ी को भी स्वच्छ पर्यावरण मिल सकें।	.10 (36)	.00 (00)	.90 (4)	147.48
4.	आप जानते हैं कि आपने न तो कोई पौधे लगाये हैं, न कभी उनकी देख-रेख की है, फिर भी आप जब तब लॉन में लगे, फूलों और पत्तियों को तोड़ लेते हैं।	.10 (4)	.00 (00)	.90 (36)	147.48
5.	आप कृषि के विद्यार्थी नहीं हैं; अत: पौधों को पानी देना तथा उनकी देख-रेख करना अपनी जिम्मेदारी नहीं मानते हैं।	.10 (4)	.00 (00)	.90 (36)	147.48
6.	आप कीड़े-मकोड़े, कवकों, चूहों, काकरोच आदि को मारने के लिए बगीचें, नालियों, खेतों में पौधों आदि पर विषैले पदार्थ छिड़क देते हैं।	.00 (00)	.00 (00)	1.00 (40)	136.02
7.	आप किसी पशु-पक्षी को भोजन पानी देकर पालते हैं। अत: आप उससे जैसा चाहें वैसा लाभ लेते हैं।	.20 (8)	.10 (4)	.70 (28)	62.63
8.	आप जानते हैं कि संरक्षित पशुओं को मारना अपराध है, फिर भी आपको यदि इनके सींग, खाल आदि मिल जाये तो सजावट के लिये प्रयोग करते हैं।	.20 (8)	.00 (00)	.80 (32)	105.05
9.	आप जानते है कि कोई जीव महत्वपूर्ण तभी होगा, जब वह आपके लिये उपायोगी हो।	.10 (4)	.30 (12)	.60 (24)	38.39
10.	जिन जीवों में चेतना बोध नहीं होता, उनमें आप कोई वास्तविक मूल्य नहीं मानते हैं।	.10 (4)	.10 (4)	.80 (32)	98.99
11.	पशुओं में सुख-दुख की अनुभूति को व्यक्त करने की क्षमता नहीं होती, अत: उनमें आप केवल सहायक मूल्य ही मानते हैं।	.10 (4)	.20 (8)	.70 (28)	62.63

क्रमश:

12.	आप जानते हैं कि चिड़ियों, चीटों आदि को खाना देना उनको पोषित करने का कार्य है, फिर भी आप कभी उन्हें कुछ खाने को नहीं देते हैं।	.10 (4)	.00 (00)	.90 (36)	147.48
13.	आप मानते हैं कि पर्यावरण के समस्त घटक मनुष्यों के उपयोग के लिये ही हैं। अत: आप जहाँ तक संभव हो भरपूर उपभोग करने का प्रयत्न करते हैं।	.10 (4)	.10 (4)	.80 (32)	98.99
	औसत	.80	.09	.11	99.05
	प्रबंधन	हाँ	अनिश्चित	नहीं	
	अपशिष्ट प्रबंधन				
1.	आप जानते हैं कि डिस्पोजल प्लेट/ग्लास का उपयोग करने से कागज या पालीथीन वर्ज्य पदार्थ के रूप में एकत्र हो जाती हैं। अत: आप डिस्पोजल पात्र के होते हुए भी शीशे/स्टील के पात्र का ही उपयोग करते हैं।	.70 (28)	.10 (4)	.20 (8)	62ण्63
2.	आप जानते हैं कि फाउन्टेन पेन के उपयोग कर रिफिल के रूप में होने वाले प्लास्टिक के हानि को रोक सकते हैं, फिर भी सुविधा के कारण हम रिफिल पेन का ही उपयोग करते हैं।	.00 (00)	.00 (00)	1.00 (40)	136.02
3.	आप जानते हैं कि लिखो-फेंको वाले कलमों से प्लास्टिक का दुरुपयोग बहुत होता है। अत: आप इनके बजाय रिफिल वाले कलमों का उपयोग करते हैं।	.60 (24)	.00 (00)	.40 (16)	23.57
4.	पुराने अखबारों के पुन: उपयोग से आप परिचित हैं, अत: आप प्रतिदिन पेपर पढ़ने के बाद संभालकर रख लेते हैं।	.90 (36)	.00 (00)	.10 (16)	23.57

क्रमश:

5.	आप गिफ्ट आदि के पैकिंग के लिए नये कार्टून या डिब्बे खरीदने की बजाय घर में संभालकर रखे पुराने डिब्बे से ही काम चला लेते हैं।	1.00 (40)	.00 (00)	.00 (00)	136.02
6.	आप घर की बिगड़ी हुई वस्तुओं को पुनः रिपेयर करना अपनी तौहीन समझकर नया खरीद लेते हैं।	.20 (8)	.00 (00)	.80 (32)	105.05
7.	बाजार में वस्तुओं की पैकिंग के संबंध में कोई ठोस मानदण्ड नहीं है, परन्तु आप सबसे मोटी और अच्छी तरह से पैक वस्तु को ही लेते हैं।	.20 (8)	.10 (4)	.70 (28)	62.63
8.	खरीददारी करते समय पॉलिथीन मुफ्त प्राप्त होता है, अतः आप प्रत्येक सामान के लिए अलग-अलग पॉलिथीन लेते हैं।	.00 (00)	.00 (00)	1.00 (40)	136.02
9.	फल, सब्जी या अन्य वस्तुओं को रखकर लाने में पॉलिथीन खराब नहीं होती। आप उसे संभालकर रखते हैं एवं पुनः प्रयोग में लाते हैं।	.80 (32)	.10 (4)	.10 (4)	98.99
10.	आप जानते हैं कि रीराइटेबुल सी.डी. (C.D) या पेनड्राइव के प्रयोग से अनावश्यक साधारण सी.डी. (C.D) के संग्रह से बचा जा सकता है। फिर भी आप सस्ते होने के कारण साधारण सी.डी. का ही प्रयोग करते हैं।	.20 (8)	.10 (4)	.70 (28)	62.63
11.	आप जानते हैं कि बेल्ट, पर्स, जूता इत्यादि चमड़े द्वारा निर्मित होते हैं। चमड़े का दुरूपयोग अधिक न हो अतः आप अपने पास इन वस्तुओं को एक से अधिक नहीं रखते हैं।	1.00 (40)	.00 (00)	.00 (00)	136.02

क्रमशः

12.	बाजार में रोज नई-नई सुविधाओं से युक्त मोबाइल सेट आ रहे हैं अत: पुराने सेट के होते हुए भी, आप नया सेट का उपयोग करते हैं।	.00 (00)	.10 (4)	.90 (36)	147.48
13.	आप एक बार प्रयोग किये गये लिफाफे को पुन: उपयोग में लाना कंजूसी समझते हैं, अत: आप हमेशा नये लिफाफे का उपयोग करते हैं।	.00 (00)	.00 (00)	1.00 (40)	136.02
14.	आप को जूट या कपड़े का झोला लेकर बाजार जाना अच्छा नहीं लगता और वहाँ सब सामान पॉलिथीन में मिल जाता है, अत: आप झोला लेकर बाजार नहीं जाते हैं।	.00 (00)	.00 (00)	1.00 (40)	136.02
	औसत	.87	.04	.09	131.20
	कुल औसत	**.79**	**.07**	**.14**	

उपरोक्त तालिका के आधार पर प्रथम उद्देश्य से संबंधित आँकड़ों के विश्लेषण द्वारा प्राप्त परिणाम, पर्यावरण प्रदूषण के आठ पक्षों के निम्नलिखित क्रमों में प्रस्तुत किये गये हैं:

(1.1) वायु प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(1.2) जल प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(1.3) ध्वनि प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(1.4) रेडियो एक्टिव प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(1.5) मृदा प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(1.6) ऊर्जा संरक्षण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(1.7) जैव विविधता संरक्षण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(1.8) अपशिष्ट प्रबंधन से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

1.1 वायु प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति के 09 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1, 2, 5, 8 एवं 9 में 80% परिस्थिति सं. 3 एवं 6 में 60%, परिस्थिति सं. 4 में 70%, जबकि परिस्थिति सं. 7 में 90%, छात्राध्यापकों ने पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की सही-सही पहचान की।

तालिका-1 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसत 75% छात्राध्यापक वायु प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण परिस्थिति की सही-सही पहचान करने में सफल रहे।

1.2 जल प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति के 06 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1 एवं 5 में 90%, परिस्थिति सं. 2 में शत प्रतिशत, परिस्थिति सं. 3 में 80%, जबकि परिस्थिति सं. 4 एवं 6 में 70%, छात्राध्यापकों ने पार्यवरणीय आचाशास्त्र की दृष्टि से दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की सही-सही पहचान की।

तालिका-1 से यह स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन 83% छात्राध्यापक जल प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण परिस्थिति की सही-सही पहचान करने में सफल रहे।

1.3 ध्वनि प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति के 06 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1 एवं 6 में 90%, परिस्थिति सं. 2 एवं 3 में शत प्रतिशत जबकि परिस्थिति सं. 4 एवं 5 में 70%, छात्राध्यापकों ने पर्यावरणीय अचारशास्त्र की दृष्टि से दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की सही-सही पहचान की।

तालिका-1 से यह स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन 86%, छात्राध्यापक ध्वनि प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण परिस्थिति की सही-सही पहचान करने में सफल रहे।

1.4 रेडियोऐक्टिव प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण परिस्थिति के 02 एकांशो पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं-

तालिका-1 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन 55%, छात्राध्यापक रेडियो ऐक्टिव प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की सही-सही पहचान करने में सफल रहे।

1.5 मृदा प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति के 03 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन 55% छात्राध्यापकों ने पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से पर्यावरणीय परिस्थिति का सही-सही पहचान किया।

तालिका-1 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन 80 प्रतिशत छात्राध्यापक मृदा प्रदूषण से सम्बन्धित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की सही-सही पहचान करने में सफल रहे।

1.6 ऊर्जा संरक्षण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति के 09 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1, 7 एवं 8 में शत प्रतिशत, परिस्थिति सं. 2 में 70%, परिस्थिति सं. 3 4 एवं 5 में 90%, जबकि परिस्थिति सं. 6 एवं 9 में 80% छात्राध्यापकों ने पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति का सही-सही पहचान किया।

तालिका-1 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन 88%, छात्राध्यापक ऊर्जा संरक्षण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की सही-सही पहचान करने में सफल रहे।

1.7 जैव विविधता संरक्षण से संबंधित पर्यावरणीय दुविधापूर्ण परिस्थिति के 13 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1, 2, 7 एवं 11 में 70%, परिस्थिति सं. 3, 4, 5 एवं 12 में 90%, परिस्थिति सं. 6 में शत प्रतिशत, परिस्थिति सं. 8, 10 एवं 13 में 80%, जबकि परिस्थिति सं. 9 में 60% छात्राध्यापकों ने पर्यावरणीय आचार शास्त्र की दृष्टि से, दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की सही-सही पहचान की।

तालिका-1 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन 80% छात्राध्यापक जैव विविधता संरक्षण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की सही-सही पहचान करने में सफल रहे।

1.8 अपशिष्ट प्रबंधन से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति के 14 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1, 7 एवं 10 में 70%, परिस्थिति सं. 2, 5, 8, 11, 13 एवं 14 में शत प्रतिशत, परिस्थिति सं. 3 में 60%, परिस्थिति सं. 4 एवं 12 में 90%, जबकि परिस्थिति सं. 9 एवं 9 में 80% छात्राध्यापकों ने पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की सही-सही पहचान की।

तालिका 1 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन 87%, छात्राध्यापक अपशिष्ट प्रबंधन से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की सही-सही पहचान करने में सफल रहे।

छात्राध्यापकों की प्रतिक्रियाओं में अन्तर की सार्थकता की जाँच के लिये पर्यावरण से संबंधित प्रत्येक दुविधापूर्ण परिस्थिति पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं का X^2 परीक्षण किया गया। तालिका-1 से यह स्पष्ट है कि पर्यावरणीय नैतिकता के अनुरूप परिस्थिति को पहचानने में, छात्राध्यापकों की औसत प्रतिक्रिया पर वायु प्रदूषण संबंधि परिस्थिति पर X^2 मान 79.28, जल प्रदूषण संबंधी परिस्थिति पर 114.67, ध्वनि प्रदूषण संबंधी परिस्थिति पर 126.15, रेडियोएक्टिव प्रदूषण संबंधी परिस्थिति पर 24.75, मृदा प्रदूषण संबंधी परिस्थिति पर 99.96, ऊर्जा संरक्षण संबंधी परिस्थिति पर 136.39, जैवविविधता संरक्षण संबंधी परिस्थिति पर 99.05 जबकि अपशिष्ट प्रबंधन संबंधी परिस्थिति पर X^2 मान 131.29 प्राप्त हुआ। तालिका-1 से यह भी स्पष्ट है कि पर्यावरण के आठ पक्षों पर औसत प्रतिक्रिया पर प्राप्त X^2 मान के साथ ही प्रत्येक परिस्थिति पर अलग-अलग प्राप्त X^2 मान भी, 2df पर .01 विश्वास स्तर पर 9.21 से कम नहीं है, अत: यहाँ निराकरणीय परिकल्पना करने में, छात्राध्यापकों द्वारा दी गई प्रतिक्रिया में सार्थक अन्तर नहीं है, को .01 विश्वास के स्तर पर अस्वीकृत करते हुए, शोध परिकल्पना कि 'छात्राध्यापकों द्वारा विभिन्न परिस्थितियों को पर्यावरणीय आचारशास्त्र के अनुसार पहचानने में दी गई प्रतिक्रिया में सार्थक अन्तर है, को स्वीकार किया जाता है।

2. दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थितियों में, छात्राध्यापकों के व्यवहार का पर्यावरणीय आचार शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन

अध्ययन के द्वितीय उद्देश्य से संबंधित आंकड़े तालिका-2 में प्रस्तुत किये गये हैं।

तालिका–2

दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थितियों में, छात्राध्यापकों के व्यवहार

क्र. सं.	परिस्थितियाँ	आपका व्यवहारिक विकल्प (दैनिक जीवन में)			
	प्रदूषण	**हाँ**	**अनिश्चित**	**नहीं**	X^2
	वायु प्रदूषण				
1.	परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ने के कारण स्थान की कमी हो रही है। इसलिये हम वृक्षों एवं बागीचों को काटकर स्थान का उपयोग कर लेते हैं।	.50 (20)	.10 (4)	.40 (16)	26.26
2.	तत्काल वायुमण्डल में किसी वस्तु को जलाने का दुष्प्रभाव पता नही चलता। अत: कचड़ा, घास–फूस आदि जला देते हैं।	.80 (32)	.00 (00)	.20 (8)	105.05
3.	फ्रिज इस्तेमाल करने का टैक्स नहीं लगता, अत: अवसर मिलने पर पूरा–पूरा इस्तेमाल करते हैं।	.70 (28)	.00 (00)	.30 (12)	74.75
4.	आपके गंतव्य तक सार्वजनिक परिवहन के साधन उपलब्ध हैं, फिर भी सुविधा की दृष्टि से अपने निजी वाहन का ही प्रयोग करते हैं।	.70 (28)	.10 (4)	.20 (8)	62.63
5.	घर पर मोटर–वाहन उपलब्ध है, फिर भी कम दूरी की यात्रा साइकिल से ही तय करते हैं।	.60 (24)	.10 (4)	.30 (12)	38.39
6.	गोघृत तिलोदन आदि वायु को शुद्ध करने वाली वस्तुयें हैं। इसलिए आप इनसे हवन करते हैं।	.80 (32)	.10 (4)	.10 (4)	98.99
7.	आप जानते हैं कि वृक्षारोपण, वायुप्रदूषण रोकने का एक उपाय है। अत: आप वृक्ष लगाते हैं।	.80 (32)	.10 (4)	.10 (4)	98.99

क्रमश:

8.	आप जानते हैं कि जैव अपशिष्टों को जलाने से वायुप्रदूषण में वृद्धि होती है फिर भी आप इधर-उधर अपशिष्टों को जलाते रहते हैं।	.30 (12)	.20 (8)	.50 (20)	14.14
9.	आप मच्छरदानी की उपयोगिता से भली-भाँति परिचित हैं,फिर भी मच्छरों से बचने के लिए मास्किटों क्वायल/ लिक्विड मास्किटों डिस्ट्रायर का प्रयोग करते हैं।	.30 (12)	.00 (00)	.70 (28)	74.75
	औसत	.50	.07	.42	31.68
	जल प्रदूषण				
1.	आप जानते हैं कि फ्लश वाले शौचालयों में जल की अधिक हानि होती है, फिर भी आप इसी प्रकार के शौचालय का प्रयोग करना चाहते हैं।	.40 (16)	.10 (4)	.50 (20)	26.26
2.	आप जानते हैं कि नदी, तालाब के समीप शौच वर्जित माना गया है, फिर भी खुले में शौच जाना हो, तो नदी, तालाब के समीप ही शौच करते हैं।	.40 (16)	.10 (4)	.50 (20)	26.26
3.	पूजन सामग्री को सामान्य कूड़े में फेकना अनुचित समझा जाता है। अत: पूजा के फूल तथा अन्य पूजन सामग्री को आप नदी/तालाब में विसर्जित करते हैं।	.80 (32)	.00 (00)	.20 (8)	105.05
4.	आप जानते हैं कि आपके क्षेत्र में पानी की कमी है, फिर भी आपने प्रयुक्त जल के पुन: उपयोग का प्रयास कभी नहीं किया है।	.50 (20)	.10 (4)	.40 (16)	26.26
5.	आप जानते हैं कि जल संरक्षण आवश्यक है। अत: आप अनाज/सब्जी आदि धुलने के बाद निकले पानी को पौधों में डाल देते हैं।	.70 (28)	.10 (4)	.20 (8)	62.63

क्रमश:

6.	आप जानते हैं, कि साबुन/शैम्पू आदि में खतरनाक रसायन होते हैं। अत: आप नहाते समय, इनका प्रयोग बहुत कम करते हैं।	.60 (24)	.00 (00)	.40 (16)	23.57
	औसत	.48	.07	.45	31.66
	ध्वनि प्रदूषण	हाँ	अनिश्चित	नहीं	
1.	आप जानते हैं कि रेडियो, टेप आदि मनोरंजन के साधनों को धीमे बजाकर ध्वनि प्रदूषण में कुछ कमी लायी जा सकती है, फिर भी आप इन्हें तेज आवाज में बजाने के आदि हैं।	.30 (12)	.00 (00)	.70 (28)	74.75
2.	सामूहिक कीर्तन, भजन व अखण्ड पाठ जैसे कार्यक्रमों में ऊंची आवाज में लाउड-स्पीकरों का उपयोग करते हैं।	.50 (20)	.00 (00)	.50 (20)	17.5
3.	आप जानते हैं कि तेज हॉर्न बजाते रहने से ध्वनि प्रदूषण होता है। अत: आप ऐसा नहीं करते हैं।	.50 (20)	.00 (00)	.50 (20)	17.5
4.	आप के द्वारा आयोजित समारोह में डीजे (D.J.) से अगल-बगल लोगों को असुविधा होती है, फिर भी आप इनकी व्यवस्था रखते हैं।	.30 (12)	.30 (12)	.40 (16)	2.02
5.	आप जानते हैं कि विवाह आदि समारोह में लाइट, बैंड, आतिशबाजी आदि न होने पर समारोह की भव्यता कम हो सकती है फिर भी आप अपने घर के समारोह सादगी से कम करते हैं।	.40 (16)	.20 (8)	.40 (16)	8.08
6.	आप जानते हैं कि दीपावली आदि पर्व में रात्रि 10 बजे के बाद आतिशबाजी प्रतिबंधित तो है पर कोई रोकता नहीं अत: त्यौहारों पर मनचाही आतिशबाजी करते हैं।	.20 (4)	.00 (00)	.80 (32)	105.05
	औसत	.55	.05	.36	32.39

क्रमश:

	रेडियोऐक्टिव प्रदूषण				
1.	यदि हम ऊर्जा संरक्षण करें तो हमारे पास उपलब्ध स्रोत हमारे लिये पर्याप्त हैं परन्तु और अधिक उपभोग के लिये आप परमाणु ऊर्जा के विकल्प को आवश्यक समझते हैं।	.60 (24)	.20 (8)	.20 (8)	32.33
2.	आप जानते हैं कि परमाणु विस्फोट हानिकारक है, फिर भी भारत को सुपर पावर बनाने के लिए आप परमाणु परीक्षणों का समर्थन करते हैं।	.80 (32)	.10 (4)	.10 (4)	98.99
	औसत	.70	.15	.15	61.12
	मृदा प्रदूषण				
1.	आप मानते हैं कि किसी भूमि का स्वामित्व आपको अधिकार देता है कि आप उस भूमि का जैसा चाहें उपभोग करें।	.50 (20)	.00 (00)	.50 (20)	17.50
2.	आप गड्ढा खोदकर कम्पोस्ट खाद तैयार करना जानते हैं, फिर भी घर एवं मुहल्ले से निकलने वाले अपशिष्टों से कम्पोस्ट तैयार करने में भी पहल नहीं करते हैं।	.60 (24)	.10 (4)	.30 (12)	38.39
3.	आप जैव अपघटित न होने वाले अपशिष्ट पदार्थों को पहचानते हैं। अतः आप उन्हें जमीन में न दबा कर कबाड़ी को बेच देते हैं।	.60 (24)	.10 (4)	.30 (12)	38.39
	औसत	.46	.14	.40	17.54
	संरक्षण	हाँ	अनिश्चित	नहीं	
	ऊर्जा संरक्षण				
1.	कपड़े चाहे अधिक धुलने हो या कम, आप वांशिग मशीन का उपयोग ही उपयुक्त मानते हैं।	.20 (8)	.00 (00)	.80 (32)	136.02

क्रमशः

2.	पानी गर्म करने में ऊर्जा व्यय होती है, फिर भी सर्दियों में आप गर्म पानी से ही स्नान करना चाहते हैं।	.50 (20)	.00 (00)	.50 (20)	17.50
3.	कक्षा में लाईट, पंखा का स्विच बंद करना चपरासी का काम है। आप कक्षा से निकलते समय लाईट, पंखा इत्यादि बंद नहीं करते हैं।	.30 (12)	.00 (00)	.70 (28)	74.75
4.	आप जानते हैं कि कोई सूचना एक ही पेपर पर लिख कर सभी को सूचित करने से कागज की बचत होती है। परन्तु फिर भी अलग लिफाफे में सूचना प्राप्त कर आप गौरवान्वित महसूस करते हैं।	.30 (12)	.00 (00)	.70 (28)	74.75
5.	पेज की कोई कमी नहीं होने पर भी आप दोनों तरफ फोटोकापी/ प्रिंट लेकर/ लिखकर पेज की बचत करते हैं।	.70 (28)	.00 (00)	.30 (12)	74.75
6.	आप जानते है सी.एफ.एल. उपयोग करने से बिजली की बचत होती है। परन्तु फिर भी आप बल्ब/ट्यूब्लाईट जलाते हैं।	.30 (12)	.10 (4)	.60 (24)	38.39
7.	पंखा चलाने का कोई अतिरिक्त शुल्क नही देना पड़ता है इसलिये आप कपड़ा सुखाने के लिये पंखा चलाकर कमरा बंद कर देते हैं।	.10 (4)	.20 (8)	.70 (28)	62.63
8.	किराये के बाद अलग से बिजली का बिल नहीं देना पड़ता है इसलिये आप कपड़ा सुखाने के लिये पंखा चलाकर कमरा बंद कर देते हैं।	.20 (8)	.00 (00)	.80 (32)	105.05
9.	यह जानते हुए कि ऊर्जा का संरक्षण आवश्यक है। आप कमरे में ठंड से बचने के लिए हीटर जलाये रखते हैं।	.40 (16)	.10 (4)	.50 (20)	26.26
	औसत	.66	.04	.29	58.96

क्रमशः

	जैव विविधता संरक्षण				
1.	आप मानते हैं कि प्रकृति के समस्त सजीव और निर्जीव मनुष्य द्वारा उपभोग होने के लिये ही निर्मित किये गये हैं। अत: आप जैसा चाहें उपभोग कर सकते हैं।	.20 (8)	.10 (4)	.70 (28)	62.63
2.	आप जानते हैं कि वृक्ष हमारे जीवन के लिये आवश्यक है। अत: आप दैनिक जीवन में लकड़ी के उपयोग को कम कर अन्य विकल्पों को प्रयोग करते हैं।	.60 (24)	.00 (00)	.40 (16)	23.57
3.	आप अपनी जीवन शैली ऐसी अपनाना चाहते हैं ताकि आपकी भावी पीढ़ी को भी स्वच्छ पर्यावरण मिल सके।	.80 (32)	.10 (4)	.10 (4)	98.99
4.	आप जानते है कि आपने न तो कोई पौधे लगायें हैं, न कभी उनकी देख-रेख की हैं। फिर भी आप जब तब लॉन में लगे, फूलों और पत्तियों को तोड़ लेते हैं।	.20 (4)	.00 (00)	.80 (32)	105.05
5.	आप कृषि के विद्यार्थी नहीं हैं, अत: पौधों को पानी देना तथा उनकी देख-रेख करना अपनी जिम्मेदारी नहीं मानते हैं।	.10 (4)	.10 (4)	.80 (32)	98.99
6.	आप कीड़े-मकोड़े, कवकों, चूहों, काकरोच आदि को मारने के लिए बगीचे, नालियों, खेतों में पौधों आदि पर विषैले पदार्थ छिड़क देते हैं।	.30 (12)	.10 (4)	.60 (24)	23.57
7.	आप किसी पशु-पक्षी को भोजन पानी देकर पालते हैं। अत: आप उससे जैसा चाहें वैसा लाभ लेते हैं।	.40 (16)	.00 (00)	.60 (24)	23.57
8.	आप जानते हैं कि संरक्षित पशुओं को मारना अपराध है, फिर भी आपको यदि इनके सींग, खाल आदि मिल जाये तो सजावट के लिये प्रयोग करते हैं।	.30 (12)	.00 (00)	.70 (28)	74.75

क्रमश:

9.	आप जानते हैं कि कोई जीव महत्वपूर्ण तभी होगा, जब वह आपके लिये उपायोगी हो।	.20 (8)	.20 (8)	.60 (24)	32.33
10	जिन जीवों में चेतना बोध नहीं होता, उनमें आप कोई वास्तविक मूल्य नहीं मानते हैं।	.20 (8)	.10 (4)	.70 (28)	62.63
11.	पशुओं में सुख-दुख की अनुभूति को व्यक्त करने की क्षमता नहीं होती अत: उनमें आप केवल सहायक मूल्य ही मानते हैं।	.10 (4)	.10 (4)	.80 (32)	98.99
12.	आप जानते हैं चिड़ियों, चीटों आदि को खाना देना उनको पोषित करने का कार्य है, फिर भी आप कभी उन्हें कुछ खाने को नहीं देते हैं।	.30 (12)	.20 (8)	.50 (20)	14.14
13.	आप मानते हैं कि पर्यावरण के समस्त घटक मनुष्यों के उपयोग के लिये ही हैं। अत: आप जहाँ तक संभव हो भरपूर उपभोग करने का प्रयत्न करते हैं।	.40 (16)	.00 (00)	.60 (24)	23.57
	औसत	.64	.04	.32	54.63
	प्रबंधन	हाँ	अनिश्चित	नहीं	
	अपशिष्ट प्रबंधन				
1.	आप जानते हैं कि डिस्पोजल प्लेट/ग्लास का उपयोग करने से कागज या पालीथीन वर्ज्य पदार्थ के रूप में एकत्र हो जाती हैं। अत: आप डिस्पोजल पात्र के होते हुए भी शीशे/स्टील के पात्र का ही उपयोग करते हैं।	.50 (20)	.20 (8)	.30 (12)	14.14
2.	आप जानते हैं कि फाउन्टेन पेन के उपयोग कर रिफिल के रूप में होने वाले प्लास्टिक के हानि को रोक सकते हैं, फिर भी सुविधा के कारण हम रिफिल पेन का ही उपयोग करते हैं।	.80 (32)	.00 (00)	.20 (8)	105.05

क्रमश:

3.	आप जानते हैं कि लिखो-फेंको वाले कलमों से प्लास्टिक का दुरूपयोग बहुत होता है। अत: आप इनके बजाय रिफिल वाले कलमों का उपयोग करते हैं।	.80 (32)	.00 (00)	.20 (8)	105.05
4.	पुराने अखबारों के पुन: उपयोग से आप परिचित हैं अत: आप प्रतिदिन पेपर पढ़ने के बाद संभालकर रख लेते हैं।	.90 (36)	.00 (00)	.10 (4)	147.48
5.	आप गिफ्ट आदि के पैकिंग के लिए नये कार्टून या डिब्बे खरीदने की बजाय घर में संभालकर रखे पुराने डिब्बे से ही काम चला लेते हैं।	.70 (28)	.00 (00)	.30 (12)	74.75
6.	आप घर की बिगड़ी हुई वस्तुओं को पुन: रिपेयर करना अपनी तौहीन समझकर नया खरीद लेते हैं।	.10 (4)	.10 (4)	.80 (32)	98.99
7.	बाजार में वस्तुओं की पैकिंग के संबंध में कोई ठोस मानदण्ड नहीं है, परन्तु आप सबसे मोटी और अच्छी तरह से पैक वस्तु को ही लेते हैं।	.50 (20)	.10 (4)	.40 (16)	26.26
8.	खरीददारी करते समय पॉलिथीन मुफ्त प्राप्त होता है, अत: आप प्रत्येक सामान के लिए अलग-अलग पॉलिथीन लेते हैं।	.20 (8)	.20 (8)	.60 (24)	32.33
9.	फल, सब्जी या अन्य वस्तुओं को रखकर लाने में पॉलिथीन खराब नहीं होती। आप उसे संभालकर रखते हैं एवं पुन: प्रयोग में लाते हैं।	.70 (28)	.00 (00)	.30 (12)	74.74
10.	आप जानते हैं कि रीराइटेबुल सी.डी. (C.D) या पेनड्राइव के प्रयोग से अनावश्यक साधारण सी.डी. (C.D) के संग्रह से बचा जा सकता है। फिर भी आप सस्ते होने के कारण साधारण सी.डी का ही प्रयोग करते हैं।	.50 (20)	.10 (4)	.40 (16)	26.26

क्रमश:

11.	आप जानते हैं कि बेल्ट, पर्स, जूता इत्यादि चमड़े द्वारा निर्मित होते हैं। चमड़े का दुरूपयोग अधिक न हो अत: आप अपने पास इन वस्तुओं को एक से अधिक नहीं रखते हैं।	.70 (28)	.20 (8)	.10 (4)	62.63
12.	बाजार में रोज नई-नई सुविधाओं से युक्त मोबाइल सेट आ रहें हैं अत: पुराने सेट के होते हुए भी, आप नया लिफाफे का उपयोग करते हैं।	.10 (4)	.10 (4)	.80 (32)	98.99
13.	आप एक बार प्रयोग किये गये लिफाफे को पुन: उपयोग मे लाना कंजूसी समझते हैं अत: आप हमेशा नये लिफाफे का उपयोग करते हैं।	.60 (24)	.00 (00)	.40 (16)	23.57
14.	आप को जूट या कपड़े का झोला लेकर बाजार जाना अच्छा नहीं लगता और वहाँ सब सामान पॉलिथीन में मिल जाता है अत: आप झोला लेकर बाजार नहीं जाते हैं।	.30 (12)	.20 (8)	.50 (20)	14.14
	औसत	.60	.09	.31	36.99
	कुल औसत	**.51**	**.08**	**.41**	

उपरोक्त तालिका-2 के आधार पर द्वितीय उद्देश्य से संबंधित आँकड़ों के विश्लेषण द्वारा प्राप्त परिणाम, पर्यावरण प्रदूषण के आठ पक्षों पर निम्न क्रमों में प्रस्तुत किये गये हैं:

(2.1) वायु प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(2.2) जल प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(2.3) ध्वनि प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(2.4) रेडियो ऐक्टिव प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(2.5) मृदा प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(2.6) ऊर्जा संरक्षण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(2.7) जैव विविधता संरक्षण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

(2.8) अपशिष्ट प्रबंधन से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की पहचान।

2.1 वायु प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति के 09 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1, में सिर्फ 40% परिस्थिति सं. 2 एवं 4 में सिर्फ 20%, परिस्थिति सं. 3 में 30%, परिस्थिति सं. 5 में 60%, परिस्थिति सं. 6 एवं 7 में 80%, परिस्थिति सं. 8 में 50%, जबकि परिस्थिति सं. 9 में 70% छात्राध्यापकों ने दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति में पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार का चयन किया।

तालिका–2 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन मात्र 50% छात्राध्यापकों ने वायु प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण परिस्थिति में पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार किया।

2.2 जल प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति के 06 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं–

परिस्थिति सं. 1 एवं 2 में 50%, परिस्थिति सं. 3 में मात्र 20%, परिस्थिति सं. 4 में 40%, परिस्थिति सं. 5 में 70%, जबकि परिस्थिति सं. 6 में 60%, छात्राध्यापकों ने दुविधापूर्ण पार्यवरणीय परिस्थिति में पर्यावरणीय आचाशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार किया।

तालिका–2 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन 40%, छात्राध्यापक वायु प्रदूषण संबंधी दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति में पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार किया।

2.3 ध्वनि प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति के 06 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1 में 70%, परिस्थिति सं. 2 एवं 3 में 50% परिस्थिति सं. 4 एवं 5 में सिर्फ 40%, जबकि परिस्थिति सं. 6 में 80%, छात्राध्यापकों ने दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति में पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार किया।

तालिका–2 से यह स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन मात्र 55%, छात्राध्यापकों ने वायु प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति में पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार किया।

2.4 रेडियोऐक्टिव प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण परिस्थिति के 02 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1 में मात्र 20%, एवं परिस्थिति सं. 2 में मात्र 10 प्रतिशत छात्राध्यापकों ने दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति में पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार किया।

2.5 मृदा प्रदूषण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति के 03 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन 55%, छात्राध्यापकों ने पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से पर्यावरणीय परिस्थिति का सही–सही पहचान किया।

तालिका–1 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन 80 प्रतिशत छात्राध्यापक मृदा प्रदूषण से सम्बन्धित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति की सही–सही पहचान करने में सफल रहे।

2.6 ऊर्जा संरक्षण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति के 09 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1 एवं 8 में 80%, परिस्थिति सं. 2 एवं 9 में 50%, परिस्थिति सं. 3, 4, 5 एवं 7 में 70%, जबकि परिस्थिति सं. 6 में 60% छात्राध्यापकों ने दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति में पर्यावरण आचारशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार किया।

तालिका–2 से स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन मात्र 55% छात्राध्यापकों ने ही ऊर्जा संरक्षण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति में पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार किया।

2.7 जैव विविधता संरक्षण से संबंधित पर्यावरणीय दुविधापूर्ण परिस्थिति के 13 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं–

परिस्थिति सं. 1, 8 एवं 10 में 70%, परिस्थिति सं. 2,6,7,9 एवं 13 में 60%, परिस्थिति सं. 3,4,5 एवं 11 में 80%, जबकि परिस्थिति सं. 12 में मात्र 50%,

छात्राध्यापकों ने दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति में पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार किया।

तालिका–2 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से औसतन मात्र 67% छात्राध्यापकों ने ही जैव विविधता संरक्षण से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति में पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार किया।

2.8 अपशिष्ट प्रबंधन से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति के 14 एकांशों पर प्राप्त परिणाम निम्नवत् हैं:

परिस्थिति सं. 1 एवं 14 में सिर्फ 50%, परिस्थिति सं. 3, 6, एवं 12 में 80%, परिस्थिति सं. 2 में सिर्फ 20%, , परिस्थिति सं. 4 में 90%, परिस्थिति सं. 5, 9 एवं 11 में 70%, परिस्थिति सं. 7, 10 एवं 13 में सिर्फ 40%, जबकि परिस्थिति सं. 8 में 60% छात्राध्यापकों ने दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थिति में पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार किया।

तालिका–2 से यह भी स्पष्ट है कि समग्र रूप से मात्र 60% छात्राध्यापकों ने अपशिष्ट प्रबंधन से संबंधित दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थितियों में पर्यावरणीय आचारशास्त्र की दृष्टि से उचित व्यवहार किया।

तालिका–2 से स्पष्ट है कि विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थिति में छात्राध्यापकों द्वारा किये जाने वाले व्यवहार पर प्राप्त औसत प्रतिक्रिया पर X^2 परीक्षण में, वायु प्रदूषण संबंधी परिस्थिति पर X^2 मान 31.68 जल प्रदूषण संबंधी परिस्थिति पर X^2 मान 31.66, ध्वनि प्रदूषण पर 32.39, रेडियोऐक्टिव प्रदूषण पर X^2 मान 61.12, मृदा प्रदूषण पर X^2 मान 17.54, ऊर्जा संरक्षण पर X^2 मान 58.96, जैवविधता संरक्षण पर X^2 मान 23.57 जबकि अपशिष्ट प्रबंधन पर X^2 मान 39.66 प्राप्त हुआ। तालिका–2 से यह भी स्पष्ट है कि पर्यावरण के आठ पक्षों पर औसत प्रतिक्रिया पर प्राप्त X^2 मान के साथ ही मात्र ध्वनि प्रदूषण संबंधी परिस्थिति सं. 4 एवं परिस्थिति सं. 5 को छोड़कर, प्रत्येक परिस्थिति पर अलग–अलग प्राप्त X^2 मान भी, 2df पर .01 विश्वास के स्तर पर 9.21 के कम नहीं है, अतः यहाँ भी निराकरणीय परिकल्पना 'पर्यावरणीय परिस्थतियों में पर्यावरणीय आचारशास्त्र के अनुसार व्यवहार करने में, छात्राध्यापकों द्वारा व्यक्त की गई प्रतिक्रिया में सार्थक अन्तर नहीं है' को .01 विश्वास स्तर पर अस्वीकृत करते हुए, शोध परिकल्पना ''छात्राध्यापकों द्वारा विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में स्वीकार किये गये व्यवहार में सार्थक अन्तर है'' को स्वीकृत किया जाता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तालिका–1 एवं तालिका–2 पर आधारित प्राप्तियों एवं उनके विश्लेषण से स्पष्टतया निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं:

1. छात्राध्यापक दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थितियों में पर्यावरणीय आचारशास्त्र के अनुसार अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों के रूप में पहचान करने में सक्षम नहीं हैं।
2. छात्राध्यापक दुविधापूर्ण पर्यावरणीय परिस्थितियों में पर्यावरणीय आचारशास्त्र के अनुकूल व्यवहार करने में सक्षम नहीं हैं।

शैक्षिक निहितार्थ

निष्कर्ष 1 एवं 2 से स्पष्ट है कि छात्राध्यापकों में पर्यावरणीय आचारशास्त्र का ज्ञान अपर्याप्त है और उस ज्ञान का व्यवहार में उपयोग देखने पर स्थिति और भी दयनीय प्रदर्शित हो रही है। इसकी पुष्टि सिंह, सिंह एवं सिंह (2008) के अध्ययन द्वारा भी होती हैं जिसमें उन्होंने पाया कि छात्राध्यापकों का पर्यावरणीय मैत्री क्रियाकलापों में व्यक्तिगत सहयोग का स्तर संतोषजनक नहीं है। जबकि सन् 2003 से ही माननीय सुप्रीम कोर्ट के निर्देशानुसार प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयीय शिक्षा तक पर्यावरण शिक्षा अनिवार्य रूप से लागू कर दी गई है और बी.एड. की उपाधि हेतु अध्ययनरत लगभग सभी छात्राध्यापक अपनी स्नातक कक्षाओं में पर्यावरण शिक्षा के लिए निर्धारित उद्देश्यों को पूरी तरह से प्राप्त करने में ये छात्राध्यापक असफल सिद्ध हुए हैं। साथ ही यह भी दृष्टिगत हो रहा है कि छात्राध्यापकों को पर्यावरणीय अर्थशास्त्र का जितना ज्ञान है, वे उतने ज्ञान को भी व्यवहार में उायोग नहीं कर पा रहे हैं।

अत: अभी तक दी जा रही पर्यावरण शिक्षा को सिर्फ व्याख्यान पर ही आधारित न रखकर उसे क्रियाकेन्द्रित बनाकर अभ्यास भी करवाना चाहिए, ताकि विद्यार्थी पर्यावरण एवं उसके संरक्षण के बारे में सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान ही न प्राप्त करें बल्कि पर्यावरण को संरक्षित रखने वाले क्रियाकलापों को आदत में ढाल सकें तथा पर्यावरण को सुरक्षित एवं संरक्षित रखने में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

संदर्भ

अमिमिया, कौजी एवं मैसर, डी. (1999); इनवायरमेंटल एजूकेशन एवं इनवायरमेंटल बिहैवियर इन जैपनीज स्टूडेंट्स यूनिवर्सिटी ऑफ टसूकूबा, जापान। 16/04/09 को प्राप्त, http://www.eubios.info/EJ94/ej94ihtml द्वारा।

गुप्ता, आर. (1982); ए स्टडी ऑफ इनवायरमेंट अवेयरनेस ऑफ सेकेण्डरी स्कूल टीचर्स, प्रकाशित एम.एड. लघु शोध प्रबंध, शिक्षा संकाय, बी.एच.यू. वाराणसी।

शाहनवाज, (1990); इनवायरमेंट अवेयरनेस एंड इनवायरमेंटल एटीट्यूड ऑफ सेकेन्डरी एंड हायर सेकेंडरी स्कूल टीचर्स एंड स्टूडेंट, बुच. एम.बी. (संपादित) फिफ्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, पेज 1754–1759।

गोपालकृष्णन, एस. (1992); इम्पैक्ट ऑफ इनवायरमेंटल एजुकेशन ऑन प्राइमरी स्कूल चिल्ड्रेन, बुच. एम.बी. (संपादित) फिफ्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, पेज 1754–1759।

कौर, एच.पी. (1992); ए स्टडी ऑफ पापुलेशन अवेयरनेस इन रिलेशन टू एटीट्यूड टूवर्ड्स ऑफ इनवायरमेंटल एजुकेशन एंड पापुलेशन एजुकेशन ऑफ प्रोफेशनल टीचर्स, बुच. एम.बी. (संपादित) फिफ्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, पेज 1754–1759।

सीमा (1997); ए सर्वे ऑफ अवेयरनेस ऑफ कालेज स्टूडेंट्स रिगार्डिंग इनवायरमेंटल पाल्यूशन, अप्रकाशित एम.एड. लघु शोध प्रबंध, शिक्षा संकाय, बी.एच.यू., वाराणसी।

मिश्रा, एस.एन. (1998); ए स्टडी ऑफ इनवायरमेंटल अवेयरनेस ऑफ सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट, बुच. एम.बी. (संपादित) फिफ्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, पेज 1754–1759

आनंद, ए. (2002); ए स्टडी ऑफ रिलेशनशिप बिटवीन इनवायरमेंटल अवेयरनेस एंड साइंटिफिक अवेयरनेस एंड साइंटिफिक एटीट्यूड एमंग हायर सेकेंडरी स्टूडेंट्स ऑफ वाराणसी सिटी, शोध प्रबंध, शिक्षा संकाय, बी.एच.यू. वाराणसी।

पटेल एन.ए. (1997); ए स्टडी ऑफ द इफैक्टिवनेस ऑफ इनवायरमेंटल अवेयरनेस प्रोग्राम आन स्टूडेंट टीचर्स, पी–एच.डी., सरदार पटेल यूनिवर्सिटी

कौशिक, वी. (2002); ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ इनवायरमेंटल अवेयरनेस एंड एटीट्यूड टूवर्ड्स इनवायरमेंटल एजुकेशन ऑफ बी.एड. स्टूडेंट, शिक्षा शास्त्र में शोध प्रबन्ध, डा. अम्बेडकर यूनिवर्सिटी।

पाठक, बी. (2008); 'पर्यावरण आचार शिक्षा पर एल्यूमनी एसोसियेशन शिक्षा संकाय बी.एच.यू. द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में उद्घाटन भाषण सुलभ अन्तर्राष्ट्रीय समाज सेवा संगठन, नई दिल्ली।

व्यास, एच. (1996); विभिन्न विषयों के माध्यम से पर्यावरण शिक्षा, परिप्रेक्ष्य, न्यूपा, नई दिल्ली, वर्ष 3, अंक 1, अप्रैल

त्रिवेदी, प्रियरंजन (1994); पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण विश्वकोष, खंड 3, भारतीय पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण संस्थान, नई दिल्ली

सिंह, ए. सिंह, एन. एवं सिंह, एस. (2008); ए स्टडी ऑफ प्रास्पेक्टिव टीचर्स पर्सनल इन्वायरमेंटल फ्रेंडली एक्शन, समाज एवं पर्यावरणीय आचार, ए.ए.ई.बी.एच.यू., वाराणसी

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 1, अप्रैल 2011

चिंतक और चिंतन

आधुनिक सन्दर्भ में पॉलो फ्रेरे का मूल्य आधारित शैक्षिक चिंतन

नन्दा द्विवेदी* और **शैलेन्द्र कुमार वर्मा****

शिक्षा व्यापक अर्थों में साक्षरता नहीं, अपितु एक जीवन दर्शन है। हम दार्शनिक विचारों, सिद्धान्तों एवं मान्यताओं के माध्यम से शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का अवकलन कर उसके निहितार्थ में छिपे हुए प्रश्नों के उत्तर ढूढते है, और सम्रग समाज के सर्वतोमुखी विकास के लिए मूल्य निर्धारित करते हैं। पॉलो फ्रेरे ने अपनी बहुचर्चित पुस्तकों 'उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र' (पेडॉगाजी ऑफ द अप्रेस्ड), प्रौढ़ साक्षरता : मुक्ति की सांस्कृतिक कार्यवाई (एजुकेशन : दि प्रेक्टिस ऑफ फ्रीडम) और माइल्स हार्टन एवं पॉलो फ्रेरे के संवाद पर आधारित पुस्तक ''चलकर राह बनाते हम'' (वी मेक द रोड बाई वाकिंग) में शिक्षा के उस विशिष्ट रूप में चित्रण किया है, जो समाज की विकृतियों के प्रति मौन न रहकर प्रतिक्रिया करती हैं।

जीवन परिचय

बीसवीं शताब्दी के प्रमुख शैक्षिक चिंतक पॉलो रिगेलस नेवेस फ्रेरे का जन्म 19 सितम्बर, 1921 को दक्षिण अमेरिकी देश ब्राजील के रेसिफे शहर में हुआ। जब विश्व में आर्थिक मन्दी की शुरुआत 1929 में हुयी तो आर्थिक कारणों से इनका परिवार रेसिफे शहर छोड़कर जोबाटाओं (ग्रामीण क्षेत्र) में आश्रय लिया। यहीं फ्रेरे का बचपन बीता जहाँ उन्होंने 10 वर्ष की अवस्था में असमानता, भूखमरी और नस्लवादी व्यवस्था का साक्षात्कार किया। बचपन में ही पिता का स्वर्गवास होने के कारण, माँ का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी तार्किक शक्ति और मेधा को देखकर एक निजी प्रतिष्ठित विद्यालय

* शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ.प्र.।
** सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ.प्र.।

के निदेशक ने उन्हें अपने विद्यालय में प्रवेश दिया; और छात्रवृत्ति की भी व्यवस्था की। वहाँ से वे कानून में स्नातक होकर शिक्षा के क्षेत्र में कार्य हेतु स्पेनिस, फ्रेंच, पुर्तगाली, और अंग्रेजी भाषाओं का अध्ययन किया। फ्रेरे के शिक्षा के क्षेत्र में किये गये कार्यों से प्रभावित होकर वहाँ के राष्ट्रपति जाआओं गुलार्ट (1961– 1964) ने उन्हें राष्ट्रीय साक्षरता मिशन शुरू करने के लिए प्रेरित किया जहाँ उन्हें एक वर्ष में 50 लाख वयस्क लोगों को शिक्षित करने का लक्ष्य दिया गया। उस समय ब्राजील में केवल साक्षर व्यक्ति को ही मताधिकार प्राप्त था। फ्रेरे के राष्ट्रीय शिक्षा के नारे को वहाँ के भूमिधरों ने काफी विरोध किया क्योंकि वे जानते थे कि यदि मजदूर वर्ग साक्षर हो जायेगा और उसे मताधिकार प्राप्त हो जायेगा; तो उसका (मजदूर वर्ग का) सत्ता पर नियत्रंण हो जायेगा। इससे डरकर भूमिधरों ने इसका विरोध किया जिसके परिणाम स्वरूप 1964 में राष्ट्रपति गुलार्ट के सत्ता का पतन हो गया और सैनिक शासन लागू कर दिया गया एवं फ्रेरे को बन्दी बनाकर 20 वर्षों के लिए निर्वासित किया गया। अपने निर्वासन के दिनों में पॉलों फ्रेरे ने सेंटियागों (1964–69), कैम्ब्रीज, मॉस्चेस्ट्स (1969–70), स्विट्जरलैण्ड (1970–79) में अपना जीवन शिक्षण, समाज सेवक एवं वर्ल्ड कौसिल ऑफ चर्चेज के राजदूत के रुप में तीसरे विश्व के अनेक देशों की यात्राएं की। 16 वर्ष के निष्कासन के बाद 1980 में वे पुन: ब्राजील वापस आये। 1988 में वे ब्राजील के शिक्षा मंत्री बने। शिक्षा के क्षेत्र में लम्बे समय तक अपने योगदान के बाद 1997 में उनका स्वर्गवास हो गया।

फ्रेरे और मूल्य आधारित शैक्षिक चिंतन

पॉलों फ्रेरे के जीवन में अनेक पड़ाव आये परन्तु, उनका दर्शन शैक्षिक मूल्यों पर आधारित रहा। वे शिक्षक में उन गुणों को देखना चाहते थे जिनका दृष्टिकोण यथार्थ के प्रति आलोचनात्मक तथा वर्णनात्मक हो। जॉन डिवी के शब्दों में 'शैक्षिक मूल्यों के विषय में कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। वह यह कि हम अध्ययन के मूल्यों का कोई पदानुक्रम निर्धारित नहीं कर सकते हैं। उनको किसी ऐसे क्रम में रखना निरर्थक होगा जिससे यह पता चले कि उसमें से किसका मूल्य अधिक या अधिकतम है। क्योंकि अनुभव में प्रत्येक अध्ययन का कार्य अनन्य और अपूरणीय होता है क्योंकि प्रत्येक अध्ययन जीवन को चरित्रगत प्रगाढ़ता प्रदान करता है। अत: उसकी श्रेष्ठता आंतरिक/अंतर्भूत और अतुलनीय होती है। (शिक्षा और लोकतंत्र, पृ. 230)

इस परिप्रेक्ष्य में हम देखें तो फ्रेरे का बचपन जिस परिवेश में बीता वहीं से उनकी सोच समाज के नैतिक जिम्मेदारियों की ओर आकृष्ट हुई। उस अवस्था (10 वर्ष की

अवस्था) को वे 'कनेक्टिव ब्वॉय' की संज्ञा देते हैं।... 'मेरे ऐसे भी दोस्त थे जो मुझसे कम खाते थे, और मुझसे ज्यादा फटे-पुराने कपड़े पहनते थे। मेरे ऐसे भी दोस्त थे, जो मुझसे ज्यादा खाते थे और बेहतर कपड़े पहनते थे। इन दोनों परिस्थितियों को देखने का मुझ पर गहरा असर पड़ा। मुझे लगा कि हमारे समाज में ही कोई न कोई बुनियादी गड़बड़ी है।.... मेरी माँ ने मुझे सिखाया था कि, ईश्वर बहुत अच्छा है इसलिए मैने यह निष्कर्ष निकाला कि जो वर्गभेद है उसके लिए न तो ईश्वर को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, न नियति को; हालांकि इसका कोई संतोषजनक कारण मैं नहीं बता सकता। 11 वर्ष की आयु में मैंने शपथ ली कि दुनिया से भूख को कम करने के जिए हर सम्भव उपाय करुँगा। (उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र)

फ्रेरे के शैक्षिक मूल्य उत्पीड़क समाज की वर्जनाओं को तोड़ने वाले हैं। वे मानते हैं कि साक्षरता का कोई अर्थ तभी है जब निरक्षर व्यक्ति में भी चेतना का संचार हो। वह भी केवल पढ़ना-लिखना ही नहीं सीखे; बल्कि आलोचनात्मक दृष्टि से प्रश्न भी पूछना सीखे। ''हमारे समाज की एक बड़ी बीमारी यह है कि वह मस्तिष्कों को नियत्रिंत ढ़ॉचे में ढालने का प्रयास करता है। यदि आप परम्परा को तोड़ने का प्रयास करते हैं तो हो सकता है कि आप का मान घट जाय परन्तु, सम्बन्ध-विच्छेद के बिना, अर्थात् पुराने को तोड़े बिना, किसी भी प्रकार के द्वन्द्व के बिना, जिसमें आपको निर्णय लेना होता है, सृजनात्मकता पैदा ही नहीं हो सकती, मेरा मानना है कि सम्बन्ध-विच्छेद के बिना मानव अस्तित्व ही सम्भव नहीं हैं''। (चलकर राह बनाते हम, पृं. 29)

फ्रेरे ऐसे शैक्षिक मूल्यों के प्रणेता हैं जो शोषण की प्रवृत्तियों के प्रति मौन न रहकर प्रतिक्रिया करती हैं और अपने को उन बन्धनों से मुक्त करती है; जो शोषक समाज उन पर आरोपित करते हैं। ''इस प्रकार मुक्ति एक प्रसव है और यह प्रसव पीड़ादायक है। इससे जो मनुष्य पैदा होता है, वह एक नया मनुष्य होता है; जिसका जीवित रहना तभी सम्भव है, जब उत्पीड़क-उत्पीड़ित के अंतर्विरोध के स्थान पर सभी मनुष्यों का मानुषीकरण हो जाय। अथवा, दूसरी तरह से कहें तो, इस अंतर्विरोध का समाधान उसी प्रसूति में जन्म लेता है जिसमें नया मनुष्य पैदा होता हैं- ऐसा नया मनुष्य, जो न तो उत्पीड़क है न उत्पीड़ित, बल्कि जो स्वतंत्रता प्राप्त करने की प्रक्रिया में है''। (उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र, पृ. 30)

फ्रेरे शिक्षकों के लिए मूल्य निर्धारित करते हुए कहते हैं कि ''जब हम प्रौढ़ साक्षरता अधिगम या शिक्षा पर सामान्यतया ज्ञान की एक प्रक्रिया के रुप में विचार करते

हैं तो, हम शिक्षक के अधिकतम व्यवस्थित ज्ञान और शिक्षार्थी के न्यूनतम व्यवस्थित ज्ञान के बीच संश्लेषण का समर्थन कर रहें होते हैं। इस संश्लेषण को संवाद द्वारा अर्जित करना होता है।... ऐसा शिक्षक जिसका दृष्टिकोण महज रटंत विद्या तक सीमित हो, वह संवाद विरोधी होता है। ज्ञान-प्रेषण की उसकी प्रक्रिया अपिरिवर्तनीय होती है। इसके विपरीत, जिसने अपने विद्यार्थियों के साथ जानने की क्रिया का अनुभव किया है; उस शिक्षक के लिए संवाद, जानने की क्रिया का प्रतीक हैं''। (प्रौढ़ साक्षरता : मुक्ति की सांस्कृतिक कार्यवाई, पृ. 24)

शिक्षा की बैंकिंग अवधारणा

शिक्षा के क्षेत्र में बैंकिग शब्द का प्रयोग कर फ्रेरे ने एक नये विचार की आधारशिला रखी जिसमें बैंकर के रुप में छात्र और जमाकर्ता के रुप में शिक्षक के प्रतिमान स्थापित किये गये हैं। वे शिक्षा के उस स्वरूप के आलोचक हैं जिसमें शिक्षक केवल अपने ही ज्ञान को श्रेष्ठ मानता है और छात्र से बिना खुला संवाद किये, उसे (ज्ञान को) उसी रूप में स्वीकार करने, कंठस्थ रखने एवं पुनः उसी रूप में वापस करने की अपेक्षा करता हैं। इस अवधारणा के कारण छात्रों में आलोचनात्मक चेतना का विकास नहीं हो पाता है; जिससे उनकी सृजनात्मक क्षमता प्रभावित होती है। इसलिए उत्पीड़क लगभग नैसर्गिक रूप से, शिक्षा में किये जाने वाले ऐसे किसी भी प्रयोग का विरोध करते हैं, जो छात्रों की चेतना को बढ़ाये। ''शिक्षा की बैंकीय अवधारणा (बैंकिगं कन्सेप्ट) में ज्ञान एक उपहार होता है, जो स्वयं को ज्ञानवान समझने वालों के द्वारा उनको दिया जाता हैं जिन्हें वे नितान्त अज्ञानी मानते है। दूसरों को परम अज्ञानी बताना उत्पीड़न की विचारधारा की विशेषता है। वह शिक्षा और ज्ञान को जिज्ञासा की प्रक्रिया नहीं मानता। शिक्षक अपने छात्रों के समक्ष स्वयं को एक आवश्यक विलोम के रुप में प्रस्तुत करता है। उन्हें परम अज्ञानी मानकर वह अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करता है। छात्र, हेगेलीय द्वन्द्ववाद के दासों की भाँति, अलगाव के शिकार होने के कारण अपने अज्ञान को शिक्षक के अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करने वाला समझते हैं।... लेकिन इस फर्क के साथ कि दास तो अपनी वास्तविकता को जान लेता है (कि मालिक का अस्तित्व उसके अस्तित्व पर निर्भर है) लेकिन ये छात्र अपनी वास्तविकता को कभी नहीं जान पाते हैं कि वे भी शिक्षक को शिक्षित करते हैं। (उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र, पृ. 53)

फ्रेरे के शैक्षिक चिंतन का उद्देश्य ब्राजील में शिक्षित समाज की स्थापना करना था। वे शिक्षा के माध्यम से लोगों में राजनैतिक चेतना जागृत करना चाहते थे। उनका यह

कहना कि ''सबसे पहले तो मैं यह कहना चाहूँगा कि अध्यापक के रूप में हमें, उस राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश के बारे में बार-बार सोचना होगा, जिसमें अध्यापक के रूप में हम काम करते हैं।... वयस्क शिक्षा के कार्यक्रम उन समाजों में प्रभावी हो रहे हैं जहाँ पीड़ा और परिवर्तन ने लोगों को पढ़ने और लिखने के लिए विशेष प्रेरणा दी है'। (चलकर राह बनाते हम, पृ. 58) उन्हें मुक्तिदाता के रूप में प्रस्तुत करता है।

फ्रेरे की बैंकिंग अवधारण का स्तम्भ संवाद है। वास्तविक संवाद द्वारा ही, निरक्षरों के बीच, उन्हीं की भाषा में, उनकी समस्याओं का निदान किया जा सकता है। संवाद के अभाव में चेतना विकसित नहीं होती है; क्योंकि संवाद एक सृजनात्मक क्रिया है। फ्रेरे का मानना है कि उत्पीड़ितों को दी जाने वाली शिक्षा में ऐसे संवादों का समावेश हो, जो उनके परिस्थितिजन्य हों, जिससे वे आसानी से समझ सकें; और महसूस कर सकें। सवांद का तरीका ऐसा हो जिसमें सीखने वाला और सिखाने वाला, दोनों का लक्ष्य एक दूसरे से सीखना हो। रामशरण जोशी के शब्दों में ''शिक्षाशास्त्री फ्रेरे संवाद को सामान्य अर्थों में न लेकर उसे व्यवस्था परिवर्तन के व्यवस्था परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। उनकी दृष्टि में गतिशील संवाद की जमीन तभी तैयार की जा सकती हैं; जबकि व्यक्ति में विवेचनात्मक चेतना का विकास हो। इसके लिए यह शर्त आवश्यक है कि शिक्षक-विद्यार्थी के पारस्परिक रिश्ते संवादात्मक हों, न कि सिर्फ ग्रहणात्मक हों'। (आदिवासी समाज और शिक्षा, पृ0 132)

1960 के दशक में ब्राजील में मताधिकार केवल साक्षर व्यक्ति को ही प्राप्त था, चाहे वह गोरा हो या काला। अभी भी निरक्षरों को मताधिकार तो है लेकिन वे चुनाव में खड़े नहीं हो सकते। ऐसे परिवेश में फ्रेरे ने 'वयस्क शिक्षा' के विस्तार की योजना बनाई; जिसका आधार स्कूली शिक्षा न होकर गैर स्कूली शिक्षा थी। वे शिक्षा के माध्यम से लोगों में राजनीतिक चेतना जागृत करना चाहते थे। वयस्कों के अध्ययन के लिए 'सांस्कृतिक केन्द्र' की स्थापना करना, जिसमें शिक्षा देने का तरीका स्कूली नहीं था; अपितु, उत्पीड़ितों में व्याप्त समस्याओं पर आधारित शैक्षिक कार्यक्रम बनाये जाते थे; तथा उनका संचालन उन्हीं में से प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। शिक्षक को 'बातचीत, तर्क वितर्क और संवाद का संयोजक' कहा जाता था, एवं विद्यार्थियों को 'संवाद में भाग लेने वाले' के नाम से संबोधित किया जाता था। ''अध्यापक को यह भी बखूबी मालूम होना चाहिए कि उनका काम क्या है। इसका मतलब यह भी जानना है कि हम एक अध्यापक के रूप

में क्या और किसके खिलाफ सक्रिय हैं। हमें कैसी और किन मुश्किलों से रु-ब-रु होना है।... मेरे अनुसार लोगों के ज्ञान का सम्मान करने का तरीका उस राजनीतिक दृष्टिकोण और ऐसे अध्यापक का चयन करना है, जो एक भिन्न प्रकार के समाज के बारे में सोचते हैं। दूसरे शब्दों में, यदि मैं जनता के ज्ञान का सम्मान नहीं करता हूँ तो मैं तुलनात्मक रुप से अधिक मुक्त समाज के लिए लड़ाई नहीं लड़ सकता। (चलकर राह बनाते हम, पृ. 76)

शैक्षिक निहितार्थ

फ्रेरे के शैक्षिक विचार ने केवल ब्राजील में ही नहीं; अपितु, सम्पूर्ण विश्व में अपनी छाप छोड़ी। स्कूल से बाहर एवं निरक्षरों के बीच उन्हीं की भाषा एवं परिवेश को आधार मानकर जिस शिक्षा प्रणाली का उन्होंने विकास किया; उससे उत्पीड़ितों में आत्मविश्वास का संचार हुआ। फ्रेरे ने निरक्षरों को साक्षर कर उन्हें 'मताधिकार के लिए अधिकार' दिलाने का सफल प्रयास किया। उनका मानना था कि शिक्षा का आरम्भ शिक्षक-छात्र अन्तर्विरोध का समाधान करते हुए होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब अन्तर्विरोध के दोनों ध्रुवों को मिला दिया जाय। हेनरी ए0 गीरो (1983) के अनुसार ''छात्रों को साक्षरता की ऐसी आलोचनात्मक कुशलतायें प्रदान करनी चाहिए जो उनको केवल यह समझने में मदद न दें कि वे प्रतिरोध क्यों करते हैं, बल्कि यह भी समझने में मदद दें कि समाज ने उन्हें क्या बना डाला है; और किस प्रकार अंशत: इसका विश्लेषण और पुनर्निर्माण किया जाये, ताकि निष्क्रियता और विक्षुब्धता की बजाय आलोचनात्मक मनन और कार्य की दशायें पैदा हो। इस स्थिति में साक्षरता की कुशलतायें वे साधन बन जाती हैं जो मजदूर वर्गीय छात्रों को इतिहास के दमित आयामों का तथा उन कुशलताओं का अधिग्रहण करने की शक्ति प्रदान करती हैं''। (परिप्रेक्ष्य, पृ. 169)

फ्रेरे का शिक्षा के क्षेत्र में किया गया कार्य मूलत: अशिक्षित को शिक्षित करना और उसे इस योग्य बना देना था; जिससे उसमें आत्म विश्वास पैदा हो सके, वह किसी शैक्षिक ज्ञान पर निर्भर न रहकर स्वयं पढ़ना-लिखना सीख सके। कृष्ण कुमार के अनुसार; फ्रेरे ने एक क्षेत्र के अन्तरविषयी अध्ययन के आधार पर जननशील (जनरेटिव) विषय वस्तुओं को तलाशने का तरीका ईजाद किया। फिर उसने इस विषयवस्तु को शब्दों और चित्रों की मदद से एक 'कोड' में बदलने का तरीका बताया। साक्षरता की शिक्षा के पहले के विद्वानों की तरह फ्रेरे ने इस बात पर जोर दिया कि शब्दों का चयन विषयवस्तु सम्बन्धी उनके महत्व के आधार पर किया जाये। लेकिन उसने यह भी कहा कि शब्दों, आख्यानों

और चित्रों में साक्षरता के विद्यार्थियों के आस-पास की दुनिया की व्याख्या उन्हीं की दृष्टिकोण में होनी चाहिए। उनमें और पहले के आचार्यों में अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्तर का आधार उनका यह तर्क था कि साक्षरता कार्यक्रम केवल तभी सफल हो सकते हैं जब वे उत्पीड़न की खिलाफत का दृष्टिकोण लेकर चलें। उनके अनुसार जनता का अनपढ़ होना उत्पीड़न का परिणाम है।'' (शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व, पृ. 64)

फ्रेरे का शैक्षिक दर्शन सामूहिक अभिव्यक्ति पर आधारित है। प्राय: यह देखा जाता है कि शिक्षित होकर भी पुन: व्यक्ति शोषण का हथियार बनकर उसी समाज का शोषण करता है जिनका वह अंग है। उनका मानना था कि छात्र और शिक्षक के बीच 'परस्पर संवाद' एवं संप्रेषण हों जिससे 'शिक्षक एक छात्र' और 'छात्र एक शिक्षक' के रूप में विकसित हो सके और एक ऐसे समाज का निर्माण करें जिससे शोषण मुक्त समाज की आधारशिला रखी जा सके। फ्रेरे के शब्दों में ''मैं बचपन से ही यह बात समझने लगा था कि शिक्षक एक शिक्षक के रूप में होता है; विद्यार्थी के रूप में नहीं। विद्यार्थी एक विद्यार्थी के रूप में एक शिक्षक नहीं हो सकता। मैं यह समझने लगा कि वे मूलत: अलग तो हैं; परन्तु उनके बीच कोई अन्तर्विरोध है। फर्क केवल इतना होता है कि शिक्षक को पढ़ाना होता है और अपना अनुभव बताना होता है; अपना अधिकार भी जताना होता है। और, विद्यार्थी को शिक्षक की सत्ता के अधिकार के सन्दर्भ में आजादी का भी अनुभव करना होता है। मुझे यह लगने लगा कि विद्यार्थियों की आजादी के विकास के लिए शिक्षक की सत्ता बहुत जरुरी है। परन्तु जब वह सीमा का अतिक्रमण करता है, और विद्यार्थियों की स्वतत्रंता का हनन करता है तब हमारे पास वह अधिकार नहीं रह जाता है। हमारे पास फिर कोई आजादी नहीं रह जाती। हमारे पास अधिनायकवाद ही बचा रह जाता है''। (चलकर राह बनाते हैं, पृ. 47)

शिक्षा के क्षेत्र में विकास करने से ही सामाजिक स्तरोन्नयन किया जा सकता है। जब तक समाज शिक्षित नहीं होगा, उसमें आत्मविश्वास पैदा नहीं किया जा सकता है; और आत्मविश्वास के अभाव में उत्पीड़ित समाज, न अपनी रक्षा कर सकता है; और न प्रतिक्रिया कर सकता है। नरिन्दर सिंह के अनुसार ''मौजूदा यथार्थ आज जिन आत्यंतिक किस्म के खतरों से बोझिल है, उन्हें ध्यान में रखते हुए जितने ज्यादा लोग इस प्रकार के शैक्षिक प्रयास में जुटें, हमारी नस्ल के लिए उतना ही बेहतर होगा क्योंकि यही वह अकेला रास्ता हो सकता है जिस पर चलकर विश्व स्तर के विवेकीकरण (फ्रेरे का शब्द 'कानसेंस्टाइजेशन)' की शुरूआत करने की ओर तथा मौजूदा हालात से बाहर आने की

ओर बढ़ा जा सकता है। दूसरे शब्दों में यही एक मात्र तरीका है जिसके जरिए हमें 'प्रतिशिक्षा' को शिक्षा में और 'प्रति संस्कृति' को संस्कृति में बदलने की उम्मीद कर सकते हैं''। (संस्कृति, शिक्षा और लोकतंत्र पृ. 54) इस प्रकार फ्रेरे के शैक्षिक मूल्यों ने समाज को एक राह दिखाई जिस पर वे चलकर अपने व्यक्तित्व, आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता को अग्रसर कर सकते हैं; जिससे एक विवेकपूर्ण एवं उत्तरदायी समाज का निर्माण हो सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा अपने मूल उद्देश्यों के साथ समाज के सबसे निचले स्तर तक पहुँचनी चाहिए; जिससे शोषण और भयमुक्त समाज का निर्माण हो सके।

सन्दर्भ

डिवी, जॉन (2004): शिक्षा और लोकतंत्र, (अनु.) लाडलीमोहन माथुर, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली।

फ्रेरे, पॉलो (1996) : उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र (अनु.) रमेश उपाध्याय, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली।

फ्रेरे, पॉलो (1997) : प्रौढ़ साक्षरता, मुक्ति की सांस्कृतिक कार्यवाई (अनु.) जवरीमल पारख, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली।

फ्रेरे पॉलो एवं हार्टन माइल्स (2005) : चलकर राह बनाते हम (अनु.) शैवाल गुप्ता, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज नई दिल्ली।

हेनरी ए. गीरो (1994) : साक्षरता, विचारधारा और विद्यालयी शिक्षा, परिप्रेक्ष्य, वर्ष 1, अंक 2 अगस्त 1994 न्यूपा, नई दिल्ली।

जोशी, रामशरण (1997) : आदिवासी समाज और शिक्षा (अनु.) अरुण प्रकाश, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली।

किरण चॉद (2006) : शिक्षा का दार्शनिक प्ररिप्रेक्ष्य, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

कुमार, कृष्ण (1998) : शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली।

सिंह, नरिन्दर (2004) : संस्कृति, शिक्षा और लोकतंत्र, ग्रंथ शिल्पी नई दिल्ली।